योगविद्या

वर्ष 12 अंक 9
सितम्बर 2023

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2023

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट:
श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् के प्रति उनके गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के उद्गार

तुम संन्यास ले रहे हो। यही तुम्हारी नियति है। अगर तुम जबरन जाना चाहो तो जा सकते हो, लेकिन ट्रेन नहीं हिलेगी। अगर बस से जाओ तो बस नहीं चलेगी और घोड़ा-गाड़ी से जाना चाहो तो घोड़ा भी टस-से-मस नहीं होगा, क्योंकि तुम्हारे जीवन का उद्देश्य एक संन्यासी बनना है, यही तुम्हारा प्रारब्ध है।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 12 अंक 9 सितम्बर 2023
(प्रकाशन का 61 वाँ वर्ष)

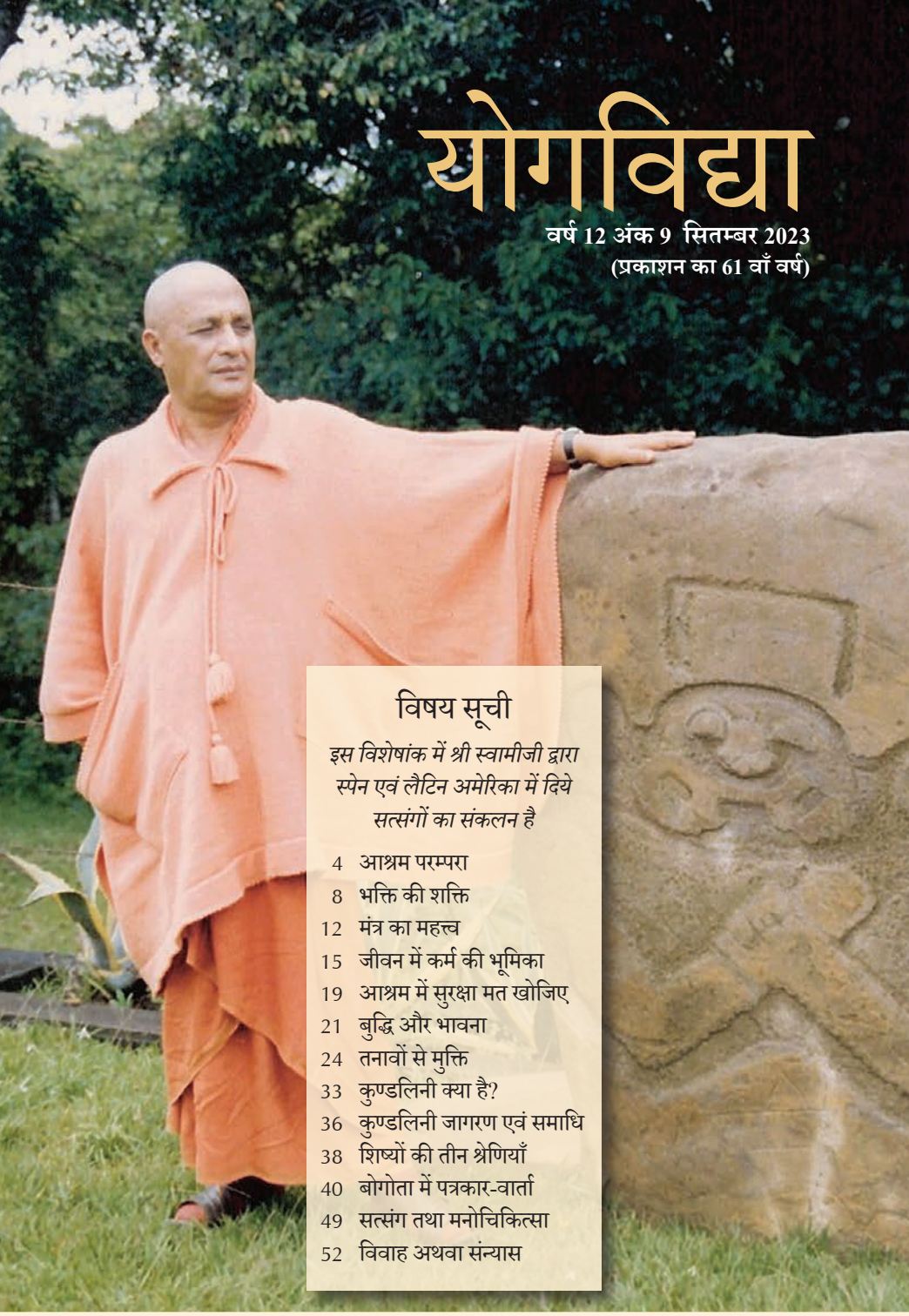

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामीजी द्वारा स्पेन एवं लैटिन अमेरिका में दिये सत्संगों का संकलन है

4 आश्रम परम्परा
8 भक्ति की शक्ति
12 मंत्र का महत्त्व
15 जीवन में कर्म की भूमिका
19 आश्रम में सुरक्षा मत खोजिए
21 बुद्धि और भावना
24 तनावों से मुक्ति
33 कुण्डलिनी क्या है?
36 कुण्डलिनी जागरण एवं समाधि
38 शिष्यों की तीन श्रेणियाँ
40 बोगोता में पत्रकार-वार्ता
49 सत्संग तथा मनोचिकित्सा
52 विवाह अथवा संन्यास

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

आश्रम परम्परा

मुझे आपका यह स्थान देखकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है जहाँ आप अनेक योग कक्षाओं का संचालन करेंगे। स्मरण रखें कि योग सिखाने की दिशा में आपका प्रत्येक प्रयास अमर होगा। मेरी इस बात को गाँठ बाँध लीजिये और आजीवन याद रखिये। भले ही यह आश्रम छोटे स्तर पर प्रारम्भ किया गया हो, परन्तु यह निश्चित रूप से लोगों के लिए कल्याणकारी होगा।

इस दिशा में आपको केवल यही करना है कि जो कुछ आप सिखाते हैं उसमें अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व की सकारात्मकता को उड़ेल दीजिये। हर व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो पहलू होते हैं, सकारात्मक तथा नकारात्मक। कुछ लोगों में सकारात्मकता अधिक होती है, तो कुछ में नकारात्मकता। मैं आपमें पूर्णता की अपेक्षा नहीं करता, किन्तु यह महत्त्वपूर्ण है कि आपमें साहस, अनुशासन, शक्ति और केवल सकारात्मकता को व्यक्त करने तथा नकारात्मकता का प्रतिरोध करने की दक्षता हो। यदि आप स्वयं को योग सिखाने के कार्य में पूरी तरह समर्पित कर दें, तो निश्चित रूप से आपके व्यक्तित्व का सकारात्मक पक्ष उजागर होगा।

योग सिखाने के पूर्व अपने जीवन को अच्छी तरह व्यवस्थित कीजिये। सुबह से रात्रि तक अध्यवसायी, सृजनशील तथा सक्रिय रहिये। विगत बारह

वर्षों में मैं हजारों योग संस्थानों में गया, परन्तु उनमें से किसी से भी प्रभावित नहीं हो पाया, क्योंकि मुझे वहाँ जो भी शिक्षक मिले उनमें रचनात्मकता का अभाव था। रचनात्मकता से मेरा अभिप्राय यह है कि आपको अपने व्यक्तित्व की सकारात्मकता अपने प्रशिक्षार्थियों को देनी चाहिए। यह तभी संभव होता है जब आप स्वयं अनुशासित हों। अनुशासन का अर्थ क्रूरता नहीं होता, यह एकीकृत भावपूर्ण जीवन है।

जहाँ तक योग प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, इस आश्रम में आपको लोगों को आसन, प्राणायाम तथा योग की अन्य क्रियाएँ सिखानी चाहिए। यहाँ आपको दैनिक कार्यक्रम देना मेरा अभिप्राय नहीं है। यह आपको लोगों की आवश्यकता, समय और सुविधानुसार तय करना होगा। हालाँकि, दिनभर में जितने अधिक सत्र आप ले सकें, अच्छा रहेगा। हर सत्र की अवधि कम-से-कम सवा घंटा होनी चाहिए। अगली कक्षा प्रारम्भ करने के पूर्व योग शिक्षक को आधे घंटे का विश्राम मिलना भी आवश्यक है।

अपनी संस्था को दो बातों से सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम इस बात का ध्यान रखिये कि हीन मनोवृत्ति के लोग, असामाजिक तत्त्व यहाँ प्रवेश न पायें। दूसरी बात यह कि इसे संस्कृति-विरोधी संस्था नहीं बनने दें। हर देश की अपनी संस्कृति, धर्म और शासन होता है। आपको बड़ी सकारात्मकता के साथ और व्यवस्थित ढंग से उनके अनुसार कार्य करना है।

मैंने ऐसी अनेक योग संस्थाएँ देखी हैं जिनमें हिप्पी घुस गये हैं तथा लड़के-लड़कियाँ बड़े लापरवाह ढंग से सोते हैं। इधर-उधर दीवालों पर अवांछित तस्वीरें लगा रखी हैं, जिससे समूचा योग संस्थान अपवित्र प्रतीत होता है। आश्रम को हमेशा साफ-सुथरा और मर्यादित होना चाहिए। यदि कभी कोई मंत्री अथवा बड़ा अधिकारी योग सीखना चाहे तो उसकी यहाँ आने में रुचि हो। आपका कान्तिमय व्यक्तित्व उसे अपनी ओर आकर्षित करे। यदि किसी युवक के व्यक्तित्व में परिपक्वता होती है तो वह दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है।

आश्रम के भीतर योग और उससे सम्बन्धित कार्यक्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं होना चाहिए। आपको आश्रम को राजनैतिक तथा सांसारिक बातों, अर्थहीन गप्पों और अफवाहों से मुक्त रखना चाहिए। आपको आश्रम के वातावरण, इसके फर्श, इसकी दीवालों, इसके पूरे माहौल को स्वच्छ रखना चाहिए। आश्रम की दीवालों पर लगाये जाने वाले चित्रों के प्रति मेरे विचार

सुनिश्चित हैं। अनेक लोग आश्रमों में चक्रों, यंत्रों, फूलों, मंदिरों और विभिन्न गुरुओं के चित्र टाँग देते हैं। इससे आश्रम संग्रहालय जैसा लगता है। आपको केवल आसनों और चक्रों के चार्ट लगाने चाहिए। आप या तो किसी कलाकार प्रशिक्षार्थी या किसी स्वामी से वह सब चित्रित करने के लिए कह सकते हैं, अथवा एक गत्ते के टुकड़े पर चित्रों को चिपकाकर यह बना सकते हैं। मैं भी आपके लिए एक सुन्दर चार्ट लाया हूँ।

जब आश्रम में छात्र आते हैं तब उन्हें आश्रम की एक नियमावली दे दें ताकि वे आश्रम व्यवस्था को बनाये रखने में आपकी मदद कर सकें। अनेक नियमों की अपेक्षा थोड़े नियम अच्छे होते हैं। यह कुछ इस प्रकार हो – 'जब तक आप आश्रम में रहें, इन नियमों का पालन करें। यह स्वयं आपके और दूसरों के हित में रहेगा। शान्तिपूर्वक कम-से-कम बातें करें। गप्प और विवादपूर्ण बहस से बचें, आश्रम परिसर में धूम्रपान नहीं करें।' यदि आप अपने आश्रम में प्रशिक्षार्थियों को शान्तिपूर्ण वातावरण कायम रखने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे तो यह मछली बाजार जैसा अशांत हो जायेगा।

यदि कोई प्रशिक्षार्थी उचित व्यवहार नहीं कर रहा हो और आपके लिये समस्यायें उत्पन्न कर रहा हो, तो उससे विशेष ढंग से निपटिये। उससे कुछ न कहिए। पहले आपको अपने वरीय सहकर्मियों को इसकी सूचना देनी चाहिए। स्वामी अथवा व्यवस्थापक को सूचित कर दीजिये। यदि आपको कोई कठोर निर्णय लेना भी हो तो उसे प्रीतिकर ढंग से व्यक्त कीजिए।

जहाँ तक प्रशिक्षार्थियों की पोशाक का सम्बन्ध है, उस पर कोई प्रतिबन्ध मत लगाइये। आश्रम के लिए कोई निश्चित पोशाक अथवा निश्चित रंग के कपड़े जरूरी नहीं होते। किसी भी व्यक्ति को केश-मुण्डन के लिए मजबूर मत कीजिये। हमेशा यह याद रखिये कि हम संन्यासी और वे गृहस्थ हैं। भले ही लक्ष्य एक हो, हमारा जीवन उनसे भिन्न है।

एक और बिन्दु जिसे मैं यहाँ जोड़ना चाहता हूँ, वह है समुचित लेखा-बही रखना। जहाँ तक आर्थिक मामलों का प्रश्न है, इस संस्था को पारदर्शी, व्यवस्थित और पूर्ण होना चाहिए। बही-खाता रखने वाले व्यक्ति को कुशल और व्यवस्थित होना चाहिए ताकि आप जब भी चाहें पूरे रजिस्टर का निरीक्षण कर सकें। स्मरण रखें कि आश्रम में जो कुछ आता है वह किसी विशेष उद्देश्य से आता है, व्यक्तिगत उद्देश्य से नहीं, बल्कि सार्वजनिक उद्देश्य से।

मेरी इस अन्तिम बात को हमेशा याद रखिये कि शिक्षक एक सेवक होता है। सेवक वह होता है जो सेवा करता है। उसमें अहंकार नहीं होना चाहिए। कुछ समय तक योग सिखाने के बाद यह मत समझने लगो कि तुम ईसा मसीह बन गये हो। जब बादल में जल भरा हुआ होता है, तो वह बरस कर पृथ्वी के तत्त्वों को ठंढक पहुँचाता है। जब वृक्ष फलों से लद जाते हैं तब उसकी शाखाएँ झुक जाती हैं। इसी प्रकार आपको अपने चेलों के सम्मुख विनम्रतापूर्वक रहना चाहिए। और आपके लिए योग का प्रशिक्षण देना विकास का एक मार्ग होना चाहिए।

– अगस्त 1979, बार्सीलोना, स्पेन

भक्ति की शक्ति

भक्ति दो प्रकार की होती है – शुद्ध भक्ति तथा कर्मकाण्डीय भक्ति। जब आप मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर या गुरुद्वारे में जाकर प्रार्थना करते हैं, तो उसे कर्मकाण्डीय भक्ति कहते हैं। यह एक प्रकार का प्रशिक्षण है, परन्तु यदि आप अपनी भावनाओं को ईश्वर की ओर मोड़ दें, तो भक्ति बड़ी प्रभावकारी तथा सशक्त होती है। यदि आपकी भक्ति तीव्र हो तो जिसके प्रति आप समर्पित हैं उसकी उपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं। मैं ऐसे अनेक भक्तों का नाम गिना सकता हूँ जिन्हें यह उपलब्धि हुई थी। परन्तु इस तरह की भक्ति बुद्धिप्रधान लोगों के लिए संभव नहीं होती। वे लोग जो बालक की तरह निर्दोष होते हैं, जिनके स्वभाव में सहजता और सरलता होती है, जो बहुत अधिक तर्क-वितर्क नहीं करते तथा जिनकी श्रद्धा दृढ़ होती है, वे ही भक्ति कर सकते हैं।

ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है। अधिकतर लोगों की भक्ति में बिखराव होता है। माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री और अन्य सगे-सम्बन्धियों के प्रति आपका जो प्रेम है, उसे भावना कहते हैं। इसी प्रकार धन-दौलत और सत्ता के प्रति लगाव भी भावना के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी भावनाएँ अनेक व्यक्तियों तथा वस्तुओं से जुड़ी रहती हैं। इसे ही भावनाओं का बिखराव कहते हैं। यदि आप स्वयं को उपर्युक्त सभी वस्तुओं

से विलग कर सकें तो संभवतः आप स्वयं को गुरु अथवा ईश्वर से युक्त कर सकते हैं। वर्तमान में आपका अस्सी प्रतिशत लगाव जगत् से और मात्र बीस प्रतिशत गुरु तथा ईश्वर से है।

यदि मैं आपका गला घोटूँ या जबरदस्ती पानी में डुबाऊँ तो निश्चय ही आप बुरी तरह छटपटाकर स्वयं को बचाने की कोशिश करेंगे। ठीक ऐसी ही तड़प आप में गुरु या ईश्वर के प्रति हो तो आप उन्हें कहीं भी और कभी भी अपने समक्ष प्रकट कर सकते हैं। यदि आप सच्चे भक्त हैं, मेरे प्रति पूरी तरह समर्पित हैं, तो यदि मैं आपसे कहूँ कि कुत्ते की तरह मेरे पीछे चलो, तो आप मेरे आदेश के औचित्य-अनौचित्य पर सोच-विचार नहीं करेंगे, क्योंकि आपका मन एकदम एकाग्र है, आपकी भक्ति में तीव्रता तथा गहराई है। यही दोनों बातें गुरु अथवा ईश्वर को प्रकट करने के लिए जरूरी हैं।

भक्ति में बड़ी शक्ति होती है, परन्तु भक्ति बड़ी मुश्किल से मिलती है। आप भले ही मंदिर में जोर-जोर से घंटी बजाकर प्रार्थना करें, गिरजाघर में चीख-चीख कर गीत गायें, परन्तु भावनाओं को एक लक्ष्य की ओर मोड़ना बड़ा कठिन कार्य है। भक्तियोग में आप ऐसा कर सकते हैं। गुरु या ईश्वर आपके माता-पिता हैं, यह एक भावना है। गुरु आपका बेटा है, यह दूसरी भावना है। गुरु आपका स्वामी है, यह तीसरी भावना है। वह आपका सखा है, यह चौथी भावना है। वह आपका नौकर है, यह पाँचवीं भावना है। वह बड़ा दुष्ट है, आप उसे एकदम पसन्द नहीं करते, यह छठी भावना है। आप उनसे जितनी घृणा करते हैं, वह आपको बार-बार याद आते हैं। यदि आप उनसे नाराज हैं, अपशब्द कहते हैं, तो गुरु हर क्षण आपके विचारों में बना रहता है। इस प्रकार उपर्युक्त छह रूपों में अथवा छह प्रकार की भावनाओं में लोग बँटे हुए मिलते हैं। आप उन सब भावनाओं को गुरु की ओर मोड़ दीजिये। इसलिए लोग कहते हैं, 'ईश्वर मेरे माता, पिता, बन्धु, सखा, प्रीतम, सेवक आदि सब कुछ हैं।' यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। इस प्रकार आप अपनी भावनाओं की डोर को ईश्वर अथवा गुरु के श्रीचरणों में बाँध दें, तो फिर आपको धन-दौलत, योगाभ्यास अथवा किसी भी कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए भक्ति को आध्यात्मिक जीवन का अणुबम कहते हैं।

हिन्दू, ईसाई तथा मुसलमान भक्तों की अनेक कहानियाँ पढ़ने को मिलती हैं। ये सब संत-महात्मा ईश्वर के दीवाने थे तथा उसके रंग में अलमस्त थे। वे बुरे नहीं थे, वे परम-पवित्र, पहुँचे हुए लोग थे। भारत में लगभग पाँच सौ वर्ष

पूर्व जब अकबर का शासन था, एक ऐसी ही महिला भक्त हुई थी। वह भारत के एक शक्तिशाली राजघराने की राजकुमारी थी। जब वह छोटी बालिका थी, उसे श्रीकृष्ण की एक मूर्ति दी गयी, जिसे वह अपना पति मानने लगी।

जब वह बड़ी हुई तो एक राजकुमार से उसका विवाह कर दिया गया। यह विवाह मात्र एक सामाजिक रस्म थी, क्योंकि उसने हृदय से श्रीकृष्ण को अपना पति स्वीकार कर लिया था। जब विवाह के पश्चात् वह ससुराल गयी तो उसकी सेविकाओं ने यह अफवाह उड़ाई कि रात्रि में नवविवाहिता राजकुमारी अकेले में किसी पुरुष से बातें करती है। एक दिन रात्रि में उसका पति दरवाजे के बाहर उसके वार्तालाप को सुनने के लिए खड़ा हो गया। उसने अपनी पत्नी का सिर धड़ से अलग कर देने का निश्चय कर रखा था। उसने मीरा को यह कहते हुए सुना, 'ओ प्रियतम! मैं तुम्हें अत्यधिक प्रेम करती हूँ।' अब तो उसका पति क्रोध से पागल हो उठा। उसने धक्के मारकर दरवाजा तोड़ डाला। परन्तु कमरे में उसे पत्नी के अतिरिक्त कोई भी नहीं मिला।

उसने पत्नी से पूछा कि वह किससे बातें कर रही थी। यह कृष्ण नाम का व्यक्ति कौन है? पत्नी ने कहा कि वह उसके पति हैं। पुनः उसने पूछा कि यह कैसे संभव हो सकता है, क्योंकि उसका विवाह तो राजकुमार के साथ सम्पन्न हो चुका है। अब वह एक विवाहित भारतीय नारी है। उसने पुनः पूछा कि यह कृष्ण नाम का व्यक्ति कहाँ रहता है? पत्नी ने कहा कि वह अशरीरी है और वह उस ईश्वर की परिणीता है। परन्तु ये बातें उसके पति की समझ में नहीं आयीं।

उसके सास-ससुर ने उसकी हत्या करने का निश्चय किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में उसका आचरण नियम-विरुद्ध था, राजमर्यादा के प्रतिकूल भी था। वह एक शक्तिशाली राजघराने की वधू तथा दूसरे राजघराने की बेटी थी। वह अनेक साधु-सन्तों को बुलाकर मन्दिर में कीर्तन करती तथा भाव-विभोर हो रात्रि में उनके समक्ष नृत्य करती। अब राजघराने की परम्परा पर आँच आने लगी। घरवालों ने उसे विष देकर मार डालने का निश्चय कर लिया। उसे विष मिला दूध पीने के लिए दिया गया, परन्तु उसे पीने के बाद भी कुछ नहीं हुआ। इसके बाद उपहार के रूप में उसके पास एक छोटी टोकरी भेजी गयी जिसमें एक विषैला नाग बन्द था। जब उसने टोकरी को खोला, तो उसमें विष्णु की एक छोटी-सी सुन्दर मूर्ति मिली! हम नहीं कह सकते कि ऐसा क्यों और कैसे हुआ?

जब उसने देखा कि घर में रहना दिन-पर-दिन कठिन होता जा रहा है, तो वह घर से निकल पड़ी। उसने दिल्ली, आगरा, मथुरा तथा वाराणसी की यात्रा की। उसके जीवन के अन्तिम दिन मथुरा में बीते। जब उसका अन्त समय आया तो वह द्वारकाधीश के मन्दिर में चली गई और वहाँ उसका शरीर प्रकाश में रूपान्तरित हो गया। वह एक सीधी-सादी महिला थी, परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति गहन भक्ति तथा समर्पण होने के कारण, वह पदार्थमय शरीर को प्रकाश में रूपान्तरित कर पायी। पदार्थ को प्रकाश में तथा प्रकाश को पदार्थ में बदला जा सकता है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि उसने स्वयं को प्रकाश में कैसे रूपान्तरित किया? इसका उत्तर यह है कि वह पदार्थ के अणुओं को पृथक् कर सकती थी। इतिहास में ऐसे अनेक भक्तों के उदाहरण उपलब्ध हैं।

प्रेम का मार्ग सेवा और समर्पण का मार्ग है। तन, मन, धन आदि जो कुछ भी हमारे पास है, उसे समर्पित करना है। जब आप सब कुछ दे चुके हैं, तो आपके पास बचा ही क्या? बस यही 'कुछ नहीं' मुक्ति है तथा मुक्ति ही सब कुछ है।

– सितम्बर 1979, कोलबातो, स्पेन

मंत्र का महत्त्व

जब कोई व्यक्ति गुरु से मंत्र ग्रहण करता है तो वह केवल एक शब्द ही नहीं, बल्कि एक अत्यन्त शक्तिशाली ध्वनि भी ग्रहण करता है। भले ही आप मंत्र मुझसे या किसी अन्य गुरु से ग्रहण करें, यह याद रखें कि आप जीवन की एक अत्यन्त मूल्यवान् निधि के स्वामी बन गये हैं। जीवन में हर वस्तु धोखा दे सकती है, परन्तु आपका गुरु-मंत्र कदापि ऐसा नहीं कर सकता। मंत्र को मात्र आध्यात्मिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी देखिये।

जिस तरह बीज बोते हैं, उसी तरह अपने अन्तर्मन की गहराई में मंत्र को भी स्थापित कीजिये, ताकि उपयुक्त अवसर पाकर वह आपके समूचे अस्तित्व पर छा जाये। प्रतिदिन दैनिक कार्य प्रारंभ करने के पूर्व तथा रात्रि में सोने के पूर्व कुछ समय तक अपने मंत्र का जप कीजिये। माला लेकर ध्यान के किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जाइये, मेरुदण्ड सीधा रखिये और नेत्रों को हल्के से बन्द कर लीजिये। माला को हृदय के पास रखते हुए मंत्र की प्रत्येक आवृत्ति के साथ एक-एक मनका सरकाते जाइये। मंत्र की आवृत्तियाँ बैखरी, उपांशु अथवा मानसिक रूप से कर सकते हैं। यदि आपका मन अशांत है तो मंत्र को बोलकर दुहराएँ। यदि आस-पास का वातावरण अपेक्षाकृत शान्त है तो होठों को स्थिर रखते हुए बिना ध्वनि किए मानसिक रूप से मंत्र को दुहराते जाइये।

माला पर जप, सुमेरु के बाद वाले प्रथम मनके से प्रारंभ कीजिये। मान लीजिये आपका मंत्र 'ॐ ऐं नमः' है तो इस मंत्र की प्रत्येक आवृत्ति के साथ

माला का एक मनका सरकाइये। इस प्रकार अपने मंत्र की 108 आवृत्तियाँ कीजिये। मंत्र और मनके को सरकाने के बीच तालमेल रखिये। इस तरह जब एक माला पूरी हो जाये तो सुमेरु पर माला को पलट दीजिये और पुनः मंत्र की आवृत्तियाँ जारी रखिये। सुमेरु को कभी पार न कीजिये। इस तरह समय की उपलब्धता के अनुसार जितनी मालाओं का जप करना चाहें, करें। यदि आप अपने जप के लिए दस मिनट का समय देते हैं, तो यह बड़ी उत्तम बात है। कम-से-कम पाँच मिनट भी देते हैं तो यह भी अच्छा है।

मंत्र-जप के समय आप मन में किसी भी प्रकार का तनाव न आने दें। मन को एकदम स्वतंत्र रखें। यदि जप के समय मन चंचल हो, तब भी मंत्र अपना काम अवश्य करेगा। कुछ समय बाद आप देखेंगे कि आपका मन धीरे-धीरे शान्त और एकाग्र होने लगता है; इसके लिये किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे लोग जो भय, निराशा, चिन्ता, परेशानियों तथा मानसिक उथल-पुथल से त्रस्त रहते हैं, उन्हें सत्ताइस मनकों वाली एक छोटी माला हमेशा अपने पास रखनी चाहिए। सोते, बैठते, खाते अथवा कोई काम करते हुए जब भी थोड़ा-सा समय मिले, इस माला पर मानसिक जप प्रारंभ कर देना चाहिए।

दिन अथवा रात में, जब भी आप फुर्सत में हों, आपके मन में शुभ-अशुभ विचारों का द्वन्द्व मचा हो, अपने मंत्र का मानसिक जप प्रारंभ कर दीजिये। आप अपने मंत्र का जप चॉकलेट खाते हुए, चाय-कॉफी पीते हुए या मद्यपान करते हुए भी कर सकते हैं। इस तरह खाली समय में मंत्र जप के साथ आप अपने मन को व्यस्त रख सकेंगे। कुछ समय बाद आप देखेंगे कि मन की चंचलता, उसका भटकना, सभी समाप्त हो गये हैं। अभी तक मन के पास कोई आधार नहीं था, परन्तु जब आप इस प्रकार खाली समय में मंत्र का जप करेंगे तो आपके मन को एक आधार मिलेगा, और वह बार-बार इस आधार पर लौटेगा। इस सरल अभ्यास द्वारा उन लोगों में मानसिक स्तर पर एक बड़ा परिवर्तन होगा जो भय, निराशा, उदासीनता तथा व्यर्थ चिन्तन से परेशान रहते हैं। मन के उपद्रवों से सफलतापूर्वक निपटने के लिए मंत्र एक अचूक उपाय है।

जीवनपर्यन्त मनुष्य का मन बिना रुके सोचते रहता है। कल्पना कीजिये, यदि आप अपनी पाँच वर्ष की अवस्था से अब तक के समस्त विचारों को लिपिबद्ध करें, तो कितनी बड़ी पुस्तक तैयार हो जायेगी! अगर आज से ही अपने सभी विचारों का लेखा-जोखा रखना प्रारंभ कर दें, तो कुछ ही समय बाद इनकी संख्या लाखों तक पहुँच जायेगी। फिर एक दिन अपनी डायरी और

लाल पेंसिल लेकर बैठिये तथा वहाँ लिखे सभी विचारों को शान्तिपूर्वक पढ़िये। स्वयं से पूछिये, 'क्या यह विचार आवश्यक और तर्कसंगत था?' यदि आपका उत्तर नकारात्मक हो, तो उस विचार को काट दीजिये। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि आप स्वयं के प्रति पूरी तरह निष्पक्ष और ईमानदार हों, तो आप पायेंगे कि 99% से अधिक विचार निरर्थक तथा अनावश्यक थे।

इसका तात्पर्य यह है कि आपकी मानसिक ऊर्जा का इन विचारों में अपव्यय हुआ है। जब भी आप कुछ सोचते हैं, आपकी प्राण-ऊर्जा के भण्डार से एक बड़ी मात्रा खर्च होती है। आप जितनी देर रेडियो अथवा ट्रांज़िस्टर बजाते हैं, उसकी बैटरी से ऊर्जा व्यय होती है। यदि आप उसे दिन भर बजायें तो बैटरी की ऊर्जा जल्दी समाप्त हो जायेगी। इसी प्रकार यदि आप अपनी मानसिक ऊर्जा इन अन्तहीन निरर्थक विचारों में बरबाद करें, तो यह पक्का मानिये कि आपकी बैटरी भी शीघ्र समाप्त हो जायेगी। यदि आप अपनी इस महान् ऊर्जा को अपव्यय से बचा सकें, तो यह आपके भीतर संचित रहेगी। यदि इसी प्रकार आप यह समझ जायें कि विचारों से ऊर्जा का व्यय और जप से इसका संचय होता है तो निश्चय ही आप मंत्र के महत्त्व को महसूस करेंगे।

यदि हम किसी प्रकार यह जान सकें कि हमारे मन के लिए एक आधार आवश्यक है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हममें से अधिकतर लोग दृढ़ इच्छाशक्ति के स्वामी बन सकते हैं। तब हम मानसिक तथा भावनात्मक पीड़ाओं से भी उबर सकते हैं, क्योंकि इनका कारण किसी प्रकार का दैवी-शाप अथवा प्रकोप नहीं होता। हम स्वयं इनके निर्माता हैं, क्योंकि हम अपने हृदय और मस्तिष्क के भीतर निहित उस महान् शक्ति को अच्छी तरह प्रयुक्त नहीं कर पाते। आज हमारी निष्क्रियता तथा शक्तिहीनता का प्रमुख कारण इस महान् ऊर्जा का दुरुपयोग ही है। आज हमारा मन सुस्त, स्मृति कमजोर तथा हृदय चिंताओं और परेशानियों से टूटा हुआ है।

इसलिए आज वे सभी व्यक्ति जिन्होंने मंत्र ले लिया है या लेने वाले हैं, यह याद रखें कि जीवन में कोई वस्तु या रिश्तेदार धोखा दे सकता है, परंतु गुरुमंत्र कभी धोखा नहीं देता। प्रतिदिन सुबह आसन-प्राणायाम के पश्चात् दस मिनट सीधे बैठकर माला पर अपने मंत्र का जप कीजिए। आँखें बन्द रखिये। शरीर तथा मन को शिथिल कीजिये। थोड़े समय के लिए सब कुछ भूल जाइये। स्वयं को मंत्र के साथ एकाकार कर लीजिये, उसमें डूब जाइये।

– अक्टूबर 1980, बोगोता, कोलोम्बिया

जीवन में कर्म की भूमिका

आप भले ही राजयोग, हठयोग, कुण्डलिनी-योग, मंत्रयोग अथवा भक्तियोग की साधना करें, परन्तु यदि आप कर्मयोग के महत्त्व का अवमूल्यन करते हैं, तो यह निश्चित मानिये कि आपकी शक्ति बिखरेगी और मन विक्षिप्त रहेगा। प्रत्येक योगाभ्यासी को अपने दैनिक कार्यकलापों को कर्मयोग के सिद्धान्त के द्वारा रूपान्तरित करना चाहिए। आपके दैनिक कर्म का उद्देश्य आध्यात्मिक बनना चाहिए, आपको अपने कर्मों के पीछे छिपे प्रकृति के आध्यात्मिक उद्देश्य की झलक मिलनी चाहिए। यदि आप कर्म का परित्याग करते हैं तो आपके मन के उत्थान के लिए कोई आधार नहीं रह जायेगा।

इसके पूर्व कि आप आध्यात्मिक उत्थान के परिप्रेक्ष्य में कर्मयोग की भूमिका को समझ सकें, आपको यह समझना आवश्यक है कि कर्मयोग का उद्देश्य विकास के लिये मन को एक ठोस आधार प्रदान करना है। ध्यान की अवस्था में मन का अपने एक ध्येय पर स्थिर रहना जरूरी है। यह भी आवश्यक है कि अन्य विचार ध्यान और मन के बीच व्यवधान उपस्थित न कर पायें। परन्तु यदि आप सतोगुणी अवस्था प्राप्त न कर सकें, आपके मन का शुद्धिकरण न हुआ हो और अपनी साधना को बढ़ाते जायें तो यह निश्चित जानिये कि आपका मन तमोगुण में लौट जायेगा। इस अवस्था को रोकने के

लिये ही प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्मयोग का विधान किया है, क्योंकि हम सबमें इच्छा, वासना तथा महत्त्वाकांक्षा होती है।

यदि आपकी कोई इच्छा ही नहीं होगी तो निश्चित रूप से आप कर्म में प्रवृत्त नहीं होंगे। यदि इच्छाओं का समूल नाश हो जाये तो मनुष्य का मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास रुक जायेगा। इसलिए इच्छाओं का हनन मत कीजिये। उन्हें या तो पूरा कीजिये अथवा उनकी व्यर्थता का बोध प्राप्त कीजिये।

इच्छाओं के हनन द्वारा आप कर्म करने के अवसर का गला घोंट देते हैं। मान लीजिए, आप संतान प्राप्ति की इच्छा करते हैं। अब इस इच्छा को पूरा करने के लिये पति या पत्नी चाहिये, घर, व्यवसाय अथवा दुकान जमाने की व्यवस्था कीजिये। इसके साथ ही अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी जुटाइये। यही वे सब कार्य हैं जो अप्रशिक्षित मन को सदैव व्यस्त रखते हैं। कर्मों का यह हथौड़ा शैतान के सिर पर चोट कर उसे उठ खड़ा होने नहीं देता। याद रखिये, मन की शक्ति अप्रतिम होती है। यदि इस शक्ति का उचित उपयोग न किया जाये तो यह मानसिक व्यक्तित्व के नकारात्मक पक्षों को सशक्त करेगा और हो सकता है यह विनाशक भी हो जाये। इसलिए प्रकृति ने कर्म की सृष्टि की है।

गीता में कहा गया है कि प्रत्येक कर्म की त्रिविध प्रतिक्रिया होती है – राग, विराग और दोनों का मिश्रण। यदि आपको अभिलषित वस्तु की प्राप्ति होती है तो आप सुखी होते हैं। इसके विपरीत कोई अनिच्छित वस्तु आपको मिल जाती है तो आप दुःखी हो जाते हैं। आपको यदि कोई ऐसी वस्तु प्राप्त होती है जिसे आप चाहते भी हैं और नहीं भी चाहते हैं, तो आपमें सुख और दुःख की मिश्रित प्रतिक्रिया होगी। जब मन पर कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया होती है तो वह बहुधा उदास तथा दिग्भ्रमित हो जाता है। इसके फलस्वरूप दमा, कैंसर, रक्तचाप तथा मधुमेह जैसी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। ऐसे समय में व्यक्ति आत्महत्या कर सकता है या पत्नी को तलाक भी दे सकता है। ऐसी अवस्था में कुछ भी हो सकता है, क्योंकि व्यक्ति के कर्म उसके व्यक्तित्व और व्यवहार दोनों को बदल देते हैं। इसलिए हमें कर्म करने का ऐसा तरीका खोजना चाहिए जिससे ऐसी विकट परिस्थितियाँ हमें विपरीत ढंग से प्रभावित न कर पायें। इन परिस्थितियों को टालने का सर्वसुलभ साधन कर्मयोग है।

हम अपने जीवन-यापन के क्षेत्र में जो भी कर्म करते हैं उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण बड़ा भौतिकवादी है। जब भी हम आध्यात्मिक जीवन के विषय में सोचते हैं, हमारे मन में कर्म के परित्याग की इच्छा उत्पन्न होती है। आश्रम

में भी यदि आप किसी से काम करने के लिये कहते हैं तो वह उससे यह कहकर जी चुराता है कि समस्त कर्म माया है और माया मनुष्य को बांधती है। परन्तु यह शत-प्रतिशत असत्य है, क्योंकि कर्म कभी बंधन का कारण नहीं होता। प्रकृति ने कर्म का निर्माण ही इसलिए किया है कि उससे मनुष्य का उत्तरोत्तर विकास हो और वह मन के व्यवहार तथा उसकी गहराई को समझे तथा पुनः मन के माध्यम से आध्यात्मिक चेतना की उपलब्धि कर सके।

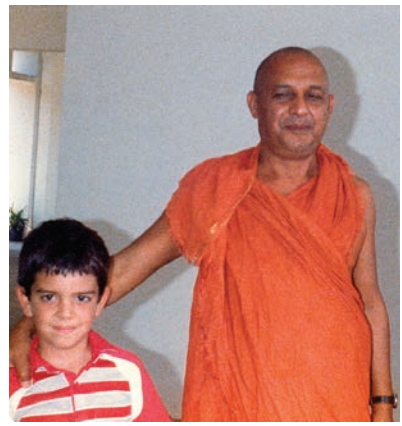

मन और आध्यात्मिक चेतना भिन्न नहीं हैं। एक दशा में दूध दिखता है, दूसरी में वह दही, तीसरी में मक्खन और चौथी स्थिति में घी बन जाता है। यही घी पाँचवीं स्थिति में आपकी दाल का एक अंग हो जाता है। ठीक इसी प्रकार हमारी प्रथम अवस्था स्थूल शरीर, दूसरी वासनाएँ, तीसरी आत्मिक अनुभव और चौथी सर्वोच्च अनुभूति होती है।

आत्मा की अभिव्यक्ति एक भिन्न अवस्था में होती है। यह भी मन की एक अवस्था होती है। इसलिए आप मन की अनदेखी नहीं कर सकते। आपको उसे शुद्ध कर संस्कारों के मल से मुक्त करना होता है। तब मन के आधार में आत्मा या चैतन्य प्रकट होता है। कर्मयोग वह कोई भी कार्य हो सकता है, जो उच्चतर सजगता के साथ किया जाता है। काम शरीर और मन को व्यस्त रखता है। भले ही आपको उससे धन की प्राप्ति नहीं हो, तब भी कर्म करते रहिये।

इसी प्रकार यदि आप गृहस्थ जीवन में अपने दैनिक कर्मों को कर्मयोग में परिणत करना चाहें, तो यह स्वीकार करें कि आध्यात्मिक विकास में कर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके बाद आप जो कुछ करें, उसमें आपको ईश्वरीय प्रेरणा दिखेगी और आनन्द मिलेगा।

यह याद रखिये कि योग का प्रारम्भ ध्यान से नहीं होता। योग अनुशासनहीन, अशिक्षित, अराजक, बलवान मन का, जो नदी की बाढ़ की तरह अनियंत्रित होता है, क्रमबद्ध प्रशिक्षण है। मन इतना बलशाली है कि आप उसे हर क्षण नियंत्रित नहीं कर सकते। इसलिए उसका प्रशिक्षण जरूरी है। उसे यह शिक्षा केवल कर्म के द्वारा ही दी जा सकती है। इसका तात्पर्य यह

है कि आप जो भी सही-गलत काम करते हैं, उसे कर्मयोग में बदल दीजिये। इसके लिये सही समझ और मनोवृत्ति का होना आवश्यक है।

आप अपने काम-काज से क्यों ऊब जाते हैं? यह आपकी मनोवृत्ति का परिणाम है। यदि आपकी मनोवृत्ति एकदम सही है, तो आप भले ही कोई काम लगातार पचास वर्षों तक करें तब भी ऊबेंगे नहीं। यदि आप अपने कर्म को कर्त्तव्य तथा सेवा भाव से करें, तो वह कभी भी ऊबाऊ नहीं हो सकता। परन्तु जब भी आप कर्म को अपनी उन्नति अथवा मनोरंजन के साधन के रूप में देखेंगे, वह न केवल ऊबाऊ, बल्कि असहनीय हो जायेगा।

दूसरों के लिये काम करना, अपने लिये करने की अपेक्षा कहीं अधिक सरल होता है। यही कर्मयोग का रहस्य है, जिसे विरले ही समझ पाते हैं। कर्म तथा कर्मयोग के बीच यही विभाजक रेखा है। जब आप किसी काम को स्वार्थ भावना से करते हैं तो वह कर्म कहलाता है, परन्तु जब आप उसी कर्म को पूजा की तरह परहित के लिये करते हैं तो उससे आपका मन मुक्त होता है और आपको कर्मयोग का लाभ मिलता है।

वास्तव में देखा जाय तो कर्मयोग कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है। इसके लिये आश्रम में जाकर रहने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु कर्मयोग के इस मूल सिद्धान्त को तथा सही मनोवृत्ति के साथ कर्मयोग की आवश्यकता को थोड़े ही लोग समझते हैं। आश्रम में आप यह सीखते हैं कि कर्मयोग कैसे किया जाता है। यह आवश्यक है, अन्यथा आप जीवनभर कर्म ही करते रहेंगे, जिससे आपका दुःख बढ़ेगा। आपका कर्म कभी भी कर्मयोग बनकर आपका तथा दूसरों का दुःख दूर नहीं कर पायेगा।

कर्मयोग जीवन का अनिवार्य अंग है। जिस तरह खाना, सोना, चलना तथा बोलना आवश्यक है, उसी तरह कर्मयोग भी आवश्यक है। आप जब तक जीवित रहेंगे, कर्म करना ही पड़ेगा। कर्मविहीन जीवन कल्पनातीत है। इसलिए आपके कर्मों का उद्देश्य सेवा तथा सर्वोदय हो, तभी आप आनन्द और स्वतंत्रता का अनुभव करेंगे। आपकी सभी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी होती जायेंगी। आप स्वयं को कभी अकेला नहीं पायेंगे और न ही दुःख-दर्द आपके पास फटकेंगे। जब मन शान्त तथा स्थिर होता है, तब शरीर भी स्वस्थ रहता है। ऐसे व्यक्ति की ओर लोग उसी तरह आकर्षित होते हैं जैसे मधुमक्खी शहद की ओर। तब आप चाहकर भी लोगों को स्वयं से परे नहीं रख सकते।

– अक्टूबर 1980, बोगोता, कोलोम्बिया

आश्रम में सुरक्षा मत खोजिए

आश्रम-जीवन पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। भले ही आश्रम-जीवन आपको कुछ सुरक्षा प्रदान कर सके, पर वह आपके मन में बैठी असुरक्षा की भावना को भी बाहर निकाल देता है। यह तब संभव नहीं हो सकता, जब आश्रम आधुनिक जीवन की तमाम सुख-सुविधाओं से युक्त हो। अधिकतर आश्रम साधारण होते हैं। उनके पास सैकड़ों एकड़ जमीन नहीं होती है, बैंको में उनका अकूत धन नहीं होता है। उनकी कार्यकारिणी तथा प्रबन्धक-मंडल में सरकार के मंत्री नहीं होते। आश्रम में केवल बीस या तीस कमरे, रसोई घर, भंडार-कक्ष तथा कार्यालय आदि हों, ताकि आपकी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। संक्षेप में आश्रम की यही रूपरेखा होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, आश्रम में कुछ कर्मयोग होना चाहिए। यह कर्मयोग खेत में, बगीचे में अथवा कुछ दस्तकारी के कार्य के रूप में हो सकता है। यह आश्रम में रहनेवालों की क्षमता के अनुकूल होना चाहिए। तिब्बती मठों में रहने वाले लोग कागज बनाते तथा उन पर प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिकृति करते थे। प्रत्येक मठवासी को कार्य के लिए निश्चित समय दिया जाता था। उनमें से कुछ तंका, तिब्बती बातिक, बनाते थे और व्यापारियों के हाथ उसे बेच कर उसके बदले आलू और मक्खन खरीदते थे। इस प्रकार वे भिक्षु अपने मठों को चलाते थे।

वर्षों पूर्व जब मैं ऋषिकेश में था, तब वहाँ से एक बार तिब्बत स्थित कैलास पर्वत गया था, जो उस समय चीन का अंग नहीं था। इस यात्रा में मुझे एक रात्रि तिब्बती मठ में, जिसे वहाँ गोम्पा कहते हैं, बिताने का अवसर मिला था। गोम्पा वह स्थान होता है जहाँ तिब्बती वीतरागी संन्यासी अपने शिष्यों के साथ रहते हैं। वे कैसा जीवन जीते हैं, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। गोम्पा इतना अलग-थलग होता है कि बाह्य संसार का कोई समाचार वहाँ नहीं पहुँच पाता। वहाँ की जलवायु भी इतनी असामान्य होती है कि वहाँ कुछ भी पैदा नहीं हो सकता। बाजार वहाँ से इतनी दूर होता है कि यदि आप पैदल जायें, तो चार-पाँच दिन में पहुँच पायेंगे। परन्तु उनके पुस्तकालय में दुर्लभ ग्रन्थों का अद्भुत संग्रह था। वहाँ हजारों पाण्डुलिपियाँ थीं, जो लकड़ी के तख्तों के बीच सिल्क के कपड़ों में बाँधकर रखी गयी थीं। पुस्तकालय

में प्रकाश के लिए तेल-बत्ती वाले दीपक रहते थे, जिन्हें भिक्षुगण प्रतिदिन अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर साफ करते थे। वे दिनभर इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करते थे। वहाँ की दिनचर्या यही थी। जब आपके आश्रम में नवयुवक तथा नवयुवतियाँ आयें, तो उन्हें कुछ ऐसा कार्य दीजिये कि उनके मन उचित ढंग से व्यस्त रहें।

मेरी राय तो यह है कि आश्रम में कृषि-कार्य होना चाहिए। इससे व्यक्ति तथा समाज, दोनों का भला होगा। समाज को अनाज, फल और सब्जियों की आपूर्ति होगी और आश्रम के सदस्यों का स्वास्थ्य सुधरेगा। व्यक्ति को यह लाभ होगा कि वह प्रकृति के सान्निध्य में, खुले वातावरण में शारीरिक श्रम करेगा। जब व्यक्ति मिट्टी, पानी, हवा, धूप, तथा वातावरण के संसर्ग में रहकर शारीरिक श्रम करेगा, तो खुद-ब-खुद उसके मन में भरी गंदगी दूर होगी और उसके मानसिक विकारों का भी उत्सर्जन होगा।

यदि आप आश्रम जीवन में प्रवेश करने का विचार रखते हैं तो वहाँ किसी भी प्रकार की सुरक्षा की अपेक्षा न रखें, क्योंकि आश्रम का लक्ष्य किसी को सुरक्षा प्रदान करना नहीं होता। आश्रम जीवन का उद्देश्य व्यक्ति के इस अहसास से उद्भूत होता है कि संसार में दुःख और पीड़ा है। उसे अपने अन्दर यह क्षमता लानी है कि वह इस दुःख और पीड़ा को सहन कर सके। आप आश्रम में क्यों आते हैं? इसलिए कि आपने इस दुःख और पीड़ा का अनुभव किया है, और जान गये हैं कि आपका जीवन अधूरा है। कोई भी समझदार व्यक्ति सुख-चैन के लिए आश्रम नहीं आता, क्योंकि आश्रम का इनसे दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता। जिन लोगों ने अपने दान और श्रम से मेरे मुंगेर आश्रम का निर्माण किया है, मैं उन्हें वहाँ मात्र सोने की जगह ही दे सकता हूँ।

यदि कोई सुख-सुविधा, भोग-विलास अथवा सुरक्षा की अपेक्षा से आश्रम आता है, तो निश्चय ही वह मूर्खों के स्वर्ग में रहता है। उसकी यह अभिलाषा मात्र मृग-मरीचिका ही सिद्ध होगी। वहाँ सब प्रकार के आमोद-प्रमोद तथा मित्रों का अभाव है तथा आपको एकदम अकेले ही रहना होगा। कुछ समय वहाँ रहने के बाद ही आप न केवल इन बातों का महत्त्व समझ सकेंगे, अपितु अपने में ही अलमस्त रहने के अभ्यस्त हो सकेंगे। आश्रम का वास्तविक स्वरूप यही होता है।

– सितम्बर 1980, बार्सीलोना, स्पेन

बुद्धि और भावना

कभी-कभी कुछ लोग रोजमर्रा के जीवन में एकदम भावनाशून्य होते हैं, परन्तु जब यही लोग सत्संग में आते हैं तो इनकी भावनाओं का अनियंत्रित विस्फोट होता है, ऐसा क्यों?

हर मनुष्य में भावनाएँ होती हैं। जीवन में कुछ ऐसे क्षण भी आते हैं जब व्यक्ति के भीतर भावनाओं का ज्वार उमड़ने लगता है। परन्तु अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो प्रायः भावनाशून्य होते हैं। जीवन में अनेक अवसरों पर वे भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाते। कदाचित् वे एक सुन्दर फूल देखते हैं तो बौद्धिक स्तर पर उसके सौंदर्य को समझते तथा स्वीकारते हैं, परन्तु उनकी भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं के बराबर होती है। यदि वे समुद्र-तट पर सूर्यास्त का मनोहारी दृश्य अथवा कोई सुन्दर वस्तु देखते हैं तो बौद्धिक स्तर पर उसकी प्रशंसा अवश्य करते हैं, परन्तु भावनात्मक स्तर पर उनकी अनुभूति एकदम शून्य रहती है। यही बात भावनात्मक अथवा यौन-सम्बन्धों पर भी लागू होती हैं। ऐसा क्यों? भावनाशून्य व्यक्तियों में बुद्धि प्रधान होती है। ऐसी बात नहीं है कि उनमें भावना नहीं होती। उनमें यह सब है, किन्तु उनके अन्दर सुरक्षित और बन्द है।

भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए बुद्धि बड़ा अयोग्य साधन है। भले ही आप विस्तारपूर्वक किसी फूल के सौंदर्य पर विद्वत्तापूर्ण चर्चा कर सकें, मानव की पीड़ाओं पर ग्रंथ लिख डालें अथवा ईश्वर भक्ति पर काव्य की रचना कर दें, परन्तु आप उसका अनुभव नहीं कर सकेंगे। जब आप सत्संग में आते हैं तो वहाँ का वातावरण पूर्णतः भावना प्रधान होता है। इस वातावरण से आप अछूते नहीं रह सकते। चूँकि सत्संग में कुछ भी बौद्धिक अथवा तार्किक नहीं

होता, इसलिए वहाँ बुद्धि के कार्यकलाप थम जाते हैं। सत्संग में केवल श्रद्धा और समझ ही प्रधान होती है।

अतएव जब भावनाशून्य व्यक्ति सत्संग के भावना-प्रधान वातावरण में आते हैं तब एकाएक उनके अन्दर भावनाओं का विस्फोट होता है। उन्हें वर्णनातीत आनन्द की अनुभूति होती है। उनकी सभी दमित भावनाएँ अभिव्यक्त होने लगती हैं। मैंने कीर्तन में ऐसे अनेक व्यक्तियों को देखा है जो भावनाओं के आवेग को नहीं रोक पाते। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहती है, वे सुबकते हैं, चीखते हैं, उनका शरीर थरथराता है और अनेक लोग तो गिर पड़ते हैं। यह कतई बुरा अनुभव नहीं है। यह पीड़ादायक भी नहीं है और न ही भयावह। इसे केवल तीव्र अनुभव ही कहा जा सकता है। व्यक्ति में जब भावनाओं का ज्वार उठता है तब उस समय उसका मूलाधार चक्र अथवा कोई नाड़ी प्रभावित होती है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को सत्संग के वातावरण में उन्मुक्त छोड़ दे।

इस सम्बन्ध में मैं आपको अपने कुछ अनुभव सुनाना चाहूँगा। प्रारम्भ से ही मुझ पर भावनाओं की प्रतिक्रिया प्रायः नहीं के बराबर रही है। मैं किसी ऐसे व्यक्ति की मृत्यु का समाचार सुनता हूँ जिसके साथ मेरी बड़ी घनिष्ठता रही हो तो मैं अधिक-से-अधिक उसके सम्बन्धियों को शोक संवेदना का एक पत्र लिख देता हूँ। बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना घट जाये अथवा कोई खुलकर मेरी आलोचना अथवा बदनामी फैलाए, फिर भी मैं उससे जरा भी प्रभावित नहीं होता। भले ही किसी व्यक्ति पर मेरा बहुत-सा पैसा उधार हो और वह लौटाने से इन्कार कर दे, तब भी मैं चिंतित नहीं होता। परन्तु जब मैं रामकथा पढ़ता हूँ तो कुछ प्रसंगों पर बच्चों जैसे सुबकने-रोने लगता हूँ। मैं उस माँ की तरह रो सकता हूँ जिसकी एकमात्र संतान उससे छिन गई हो।

जीवनभर मैंने घटनाओं को बुद्धि की दृष्टि से देखा है, और मैंने समझा है कि भावनाओं का प्रयोजन मात्र भक्तियोग के लिए है, न कि जगत् की हर छोटी-बड़ी वस्तु के लिए। सांसारिक प्रपंचों के लिए प्रकृति ने आपको बुद्धि प्रदान की है। भले ही आप बौद्धिक रूप से लोगों से प्रेम और घृणा करें, परन्तु आपका हृदय केवल एक वस्तु के लिए सुरक्षित रहे। वह यह कि जब भी आप भागवत कथा सुनें, उनके नाम का संकीर्तन करें, संतों के सामने बैठें अथवा उनके चरित्र का श्रवण करें, तो ऐसे अवसरों पर अपनी बुद्धि को ताले में बन्द कर दें तथा भावनाओं के द्वार खोल दें।

मैंने हमेशा अपने जीवन में ऐसा ही किया है। यदि आप भी ऐसा करें तो पायेंगे कि बौद्धिक प्रक्रिया से आप जीवन की हर परिस्थिति से निबट सकेंगे। आश्रम चलाना, शिष्यों के साथ रहना, पैसों का लेनदेन, लोगों को सलाह तथा उपदेश देना, उनसे परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना, आदि सब बुद्धि के कार्य हैं। इसके लिए भावना का उपयोग निरर्थक है। उसे तो सुरक्षित रखना चाहिए।

मान लें आपके रसोई घर में एक छोटा चूहा उपद्रव करता है और आप उससे मुक्ति पाना चाहते हैं। तो चूहे को मारने के लिए आप मशीनगन का उपयोग तो नहीं करते न? ठीक यही बात सांसारिक प्रपंचों पर भी लागू होती है। इसके लिए भावनाओं का उपयोग करना व्यर्थ है। सांसारिक सम्बन्ध अनित्य हैं। उन्हें इतना घनिष्ठ अथवा स्थायी न बनाइये कि उनकी जड़ें भावनाओं तक पहुँच जायें। यदि भावनाओं को ईश्वर भक्ति तथा उच्च अनुभवों के लिए सुरक्षित रखा जाये तो उचित अवसर पर वे उच्च अनुभव के लिए तीव्रगामी वाहन का कार्य करेंगे।

अनेक लोगों को उच्चतर आध्यात्मिक अनुभव नहीं होते। इसका सीधा कारण यह है कि वे अपनी भावनाएँ सांसारिक प्रपंचों में तथा बुद्धि ईश्वर में लगाते हैं। यदि आप अपनी भावनाएँ तथा व्यक्तित्व सांसारिक प्रपंचों में नियोजित करेंगे, तो किसी भी प्रकार का लाभांश नहीं पा सकेंगे। इससे केवल हताशा, निराशा, उदासी, व्याधि तथा खिन्नता ही हाथ आयेगी। यदि बुद्धि से ईश्वर को देखना चाहेंगे तो कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। आप ईश्वर के बारे में कुछ विचित्र एवं हास्यास्पद धारणाएँ बना लेंगे। निरंतर प्रार्थना करते रहने पर भी आपको शून्य के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। इस तरह आप आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक, दोनों क्षेत्रों में विफल रहेंगे। अब इस क्रम को पलट दीजिए – बुद्धि संसार को तथा भावनाएँ ईश्वर को समर्पित कीजिये।

यदि आप सांसारिक घटनाओं के प्रति एकदम ठंढे तथा प्रतिक्रियाशून्य हैं, तो यह बिल्कुल सही है, परन्तु जब आप सत्संग में आयें तो स्वयं को एकदम खुला रखें। आप स्वयं को एक निष्कपट शिशु के समान अभिव्यक्त कर सकते हैं। इस बात की चिन्ता न करें कि आसपास बैठे लोग आपके बारे में क्या सोचेंगे, क्योंकि यदि सत्संग में आये लोग भावनाओं के परिणामों को नहीं समझ पाते तो इसका तात्पर्य यह है कि वे सत्संग में भी बौद्धिक रूप से ही सम्मिलित हो रहे हैं।

– सितम्बर 1980, बार्सीलोना, स्पेन

तनावों से मुक्ति

आधुनिक मनोविज्ञान के प्रणेता डॉ. सिग्मंड फ्रायड की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो रही है कि 'जैसे-जैसे तकनीकी संस्कृति विकसित होगी, मानव तनावों और दबावों से पीड़ित होगा।' ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में महर्षि पतंजलि नामक एक महान् विचारक संत हुए, जिन्हें मानव मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र नामक एक लघु ग्रंथ की रचना की जिसमें पाँच सौ से अधिक शब्द नहीं हैं। इस ग्रंथ की मुख्य विषयवस्तु तनाव है।

आप अधिक सोचते हैं या कम, आप तनाव संचित करते हैं। आप शारीरिक श्रम करते हैं या नहीं, आप तनाव संचित करते हैं। आप पूरी नींद सोयें या न सोयें, आप तनाव संचय करते हैं। आप भारी प्रोटीन युक्त भोजन लें या कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन या शाकाहारी भोजन ही क्यों न लें, आप तनाव संचय करते हैं। ये तनाव मानव व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों पर जमा होते हैं। ये पेशी संस्थान में, भावनाओं और मन के स्तर पर एकत्र होते हैं। अतः ये तनाव तीन प्रकार के होते हैं – पेशीय, भावनात्मक एवं मानसिक।

योग में तनावों से मुक्ति की व्यापक संभावनाएँ विद्यमान हैं। हमारी मान्यता है कि यदि आपका मन तनावग्रस्त होगा तो उसके परिणामस्वरूप पाचन-क्रिया

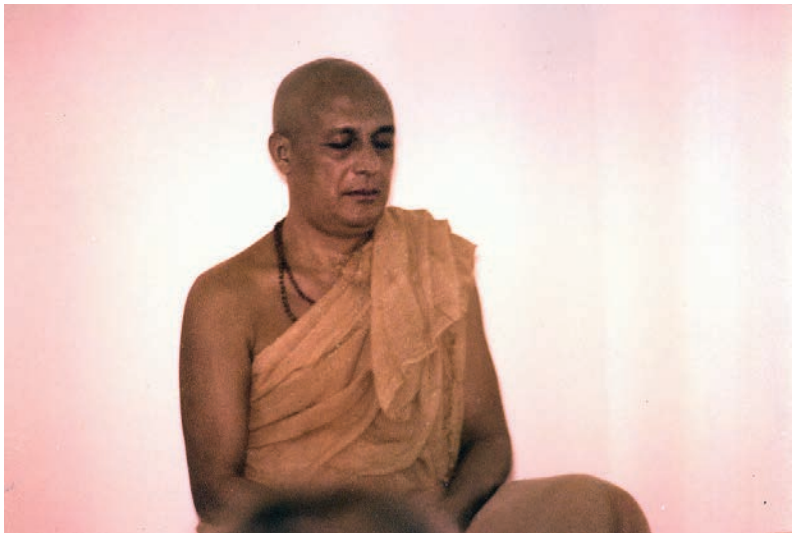

बिगड़ जायेगी। पेट का प्रभाव हृदय पर पड़ेगा और हृदय के तनावग्रस्त होने से रक्तसंचार की प्रक्रिया भी तनावग्रस्त हो जायेगी। इस प्रकार तनावों का एक अन्तहीन चक्र चलता रहेगा। योग में शिथिलीकरण द्वारा तनावों से मुक्ति ही एक मुख्य रूप से महत्त्वपूर्ण बात है।

कुछ वर्षों पूर्व मुझे आसनों के प्रदर्शनों में यह देखने का अवसर मिला कि वे पेशीय तनावों से मुक्ति दिलाते हैं। एक वैज्ञानिक इलेक्ट्रोमायोग्राफ (ई. एम. जी.) यंत्र के द्वारा आसनों के दरम्यान पेशीय तनाव के गिरते स्तर को नोट करता तथा उपस्थित व्यक्तियों को बताता था। यह एक ऐसा यंत्र है जो एक साथ ही विभिन्न पेशीय समूहों में, आसन या संभवतः अन्य जिमनास्टिक व्यायाम करते समय उत्पन्न हो रहे विद्युत गतिविधियों को मापता है।

उपर्युक्त प्रयोग में सोलह विभिन्न पेशियों में अति संवेदनशील इलेक्ट्रोड प्रविष्ट कर उनकी गतिविधियों को रिकॉर्ड किया गया। इन संकलित आँकड़ों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि बिस्तर पर आराम से लेटा व्यक्ति तनाव से मुक्त नहीं कहा जा सकता। भले ही वह स्वयं को तनाव से मुक्त अनुभव करे, परन्तु उसकी पेशियों में न्यूनतम बीस इकाई तनाव उपस्थित रहता है।

जब इस प्रकार लेटे हुए व्यक्ति को पश्चिमोत्तानासन करने के लिये कहा गया तो तत्काल उसकी पीठ, कंधे, गरदन, पुट्ठों और पिण्डलियों में तनाव का स्तर गिर गया। एकमात्र पश्चिमोत्तानासन द्वारा उसके पृष्ठ भाग की समस्त मांसपेशियों में तनाव घट गया।

शुरू में देखने पर ऐसा लगता है कि आसनों से शरीर में तनाव बढ़ता है, परन्तु इलेक्ट्रोमायोग्राफ द्वारा किया गया उपर्युक्त प्रयोग इस धारणा का स्पष्ट खण्डन करता है। आसनों से शरीर के विभिन्न पेशी-समूह नियंत्रित ढंग से शिथिल होते हैं, इसलिए हमारी यह वैज्ञानिक अनुशंसा है कि जब भी आप स्वयं को तनावग्रस्त अनुभव करें तो बिस्तर में लेटने की अपेक्षा पश्चिमोत्तानासन करें, आपको अधिक लाभ होगा, क्योंकि पश्चिमोत्तानासन करने से मांसपेशियाँ तनावग्रस्त नहीं होतीं, बल्कि शिथिल होकर विश्राम पाती हैं।

इलेक्ट्रोमायोग्राफ द्वारा एक अन्य प्रयोग में देखा गया कि आरामकुर्सी पर मजे से लेटे एक व्यक्ति में सैंतीस इकाई तनाव उपस्थित था। आजकल यह सामान्य बात है कि जब भी व्यक्ति स्वयं को तनावग्रस्त अनुभव करता है, आरामकुर्सी पर लेटकर सिगरेट अथवा बोतल की सहायता से उससे छुटकारा

पाने का प्रयास करता है। सभ्य समाज के लिए यह एक आदिम धारणा नहीं तो और क्या है।

अब उसी व्यक्ति से भुजंगासन करने के लिए कहा गया। प्रारम्भ में ऐसा लगता है कि भुजंगासन से रीढ़ के आसपास तनाव बढ़ जाता है। विशेष रूप से रीढ़ के निचले हिस्से में ऐसा लगता है कि वहाँ तनाव टॉर्च के प्रकाश की तरह केन्द्रीभूत हो गया है, परन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इलेक्ट्रोमायोग्राफ यंत्र तथा संवेदनशील इलेक्ट्रोड ने रीढ़ के निचले हिस्से में तनाव को एकदम शून्य पाया। इससे यह सिद्ध होता है कि दिनभर कुर्सी में बैठकर काम करने के बाद यदि कंधों और पीठ में पीड़ा का अनुभव हो, तो आराम कुर्सी में लेटने की अपेक्षा भुजंगासन का अभ्यास लाभदायक होगा।

अब मैं तनाव के दूसरे आयाम पर आता हूँ। यहाँ लास पामास में ऐसे अनेक व्यक्ति होंगे जिन्हें श्वास-प्रश्वास में अवरोध अनुभव होता होगा। बहुधा यह बाधा दमा को जन्म देती है, जिसमें व्यक्ति के लिए श्वास-प्रश्वास कठिन हो जाता है। श्वास सम्बन्धी इस बाधा का मूल कारण मानसिक तनाव है, जिसका कारण कोई सदमा अथवा दुःख होता है। परन्तु इसे सिद्ध करने के लिए आपके पास कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं होते। इसलिए आप इसका कारण जलवायु पर यह कहकर थोप देते हैं कि 'आज तेज ठंडी हवा चल रही है, कुहरा छाया हुआ है अथवा वायु में बहुत अधिक प्रदूषण है आदि' परन्तु मानसिक प्रदूषण के लिए आपके पास क्या उपाय है? क्या आप जानते हैं कि मानसिक प्रदूषण कैसे होता है? जब आपका मन नकारात्मक विचारों, भय, परेशानी तथा ईर्ष्या से भर जाता है तो आप मानसिक तथा संवेगात्मक तनावों को जन्म देते हैं। ये त्रिविध तनाव ही श्वसन सम्बन्धी गड़बड़ियों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

शशांकासन दूसरा अन्य महत्त्वपूर्ण आसन है, जिसका अभ्यास हिन्दू और मुसलमान करते हैं तथा पूर्वकाल में ईसाई भी करते थे। वज्रासन में बैठ जाइए तथा श्वास छोड़ते हुए मस्तक जमीन से लगाइये। दोनों हाथों को चाहे तो सामने जमीन पर टिकाइए अथवा पीछे की ओर कमर पर बाएँ हाथ से दाहिनी कलाई पकड़ लीजिये। यह कोई धार्मिक अभ्यास नहीं है। इसका अपना वैज्ञानिक महत्त्व है, इसलिए यह धर्मों से आया प्रतीत होता है। जितनी देर आप इस आसन में रहते हैं, शरीर तनावमुक्त रहता है। प्रतिदिन सुबह-शाम पन्द्रह मिनट इस आसन का अभ्यास बड़ा लाभदायक होता है। जब दमा के

MAYO
1982
1er SEMINARIO DEL C

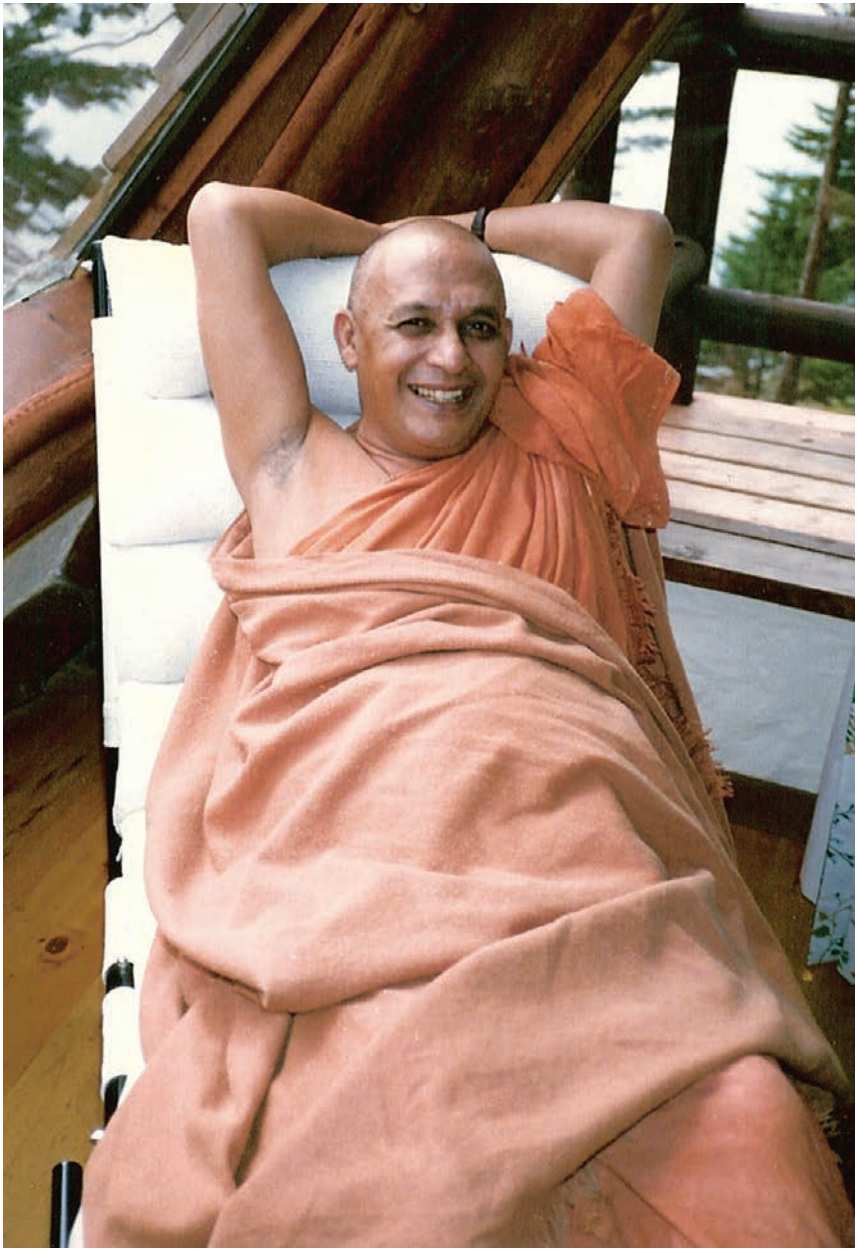

दौरे की आशंका हो तब यथासंभव जितनी देर तक हो सके, इस आसन में रहिए। यह आपको भावनात्मक तनाव तथा श्वसन संस्थान की रुकावट से निश्चय ही मुक्त करेगा।

अब मानसिक तनाव पर आइए। जब आप इनसे परेशान हों तब मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए वज्रासन अथवा पद्मासन में बैठ जाएँ और प्राणायाम के अभ्यास के लिए तैयार हो जाएँ। बायीं नासिका से शीघ्रतापूर्वक बीस श्वास-प्रश्वास कीजिये। फिर दायीं नासिका से भी ऐसा ही कीजिये। तत्पश्चात् दोनों नासिका रंध्रों से भी बीस बार श्वास-प्रश्वास करें। यह एक आवृत्ति हुई। ऐसी पाँच आवृत्तियाँ कीजिये। इसे भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं। इसे करने पर आप हल्का और तरोताजा अनुभव करेंगे।

जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, सफलता-विफलता तथा प्रेम एवं घृणा से जो तनाव उत्पन्न होते हैं उन्हें संवेगात्मक तनाव कहते हैं। इनसे मुक्ति पाने का आपके पास क्या उपाय है? प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में इनका सामना करना पड़ता है। इसलिए इनसे बचने का उपाय भी जानना आवश्यक है। यद्यपि योग के पास इनसे निपटने की अनेक युक्तियाँ हैं, तथापि मैं आपको उनमें से एक की जानकारी दूँगा। ध्यान के किसी आरामदायक आसन में आँखें बन्द कर बैठ जाइये और अपने मंत्र को लगातार दुहराते जाइये। मन में उठने वाले विचारों के प्रति साक्षी भाव रखते हुए मंत्र को चलने दीजिये। विचारों से उद्विग्न न होइये। भले ही ये विचार शुभ हों अथवा अशुभ, उनके आगमन में बाधा न डालिये। हर तरह के विचार उठने दीजिये। इस प्रकार मन की सफाई में स्वयं अपने सहायक बनिये। इस प्रकार आप अपने संवेगात्मक तनावों से मुक्त हो सकेंगे।

यदि आप अपने विचारों को दबाते हैं तो इससे आपकी मानसिक ऊर्जा अवरुद्ध होगी, परन्तु यदि आप उन्हें निकल जाने देते हैं तो आपको बड़ा मानसिक विश्राम मिलेगा। यह प्रक्रिया अन्तर्मौन कहलाती है। मन को शान्त करने के लिए न तो उसका दमन करें और न ही उसे दण्ड दें। जब आपकी पाचन-क्रिया गड़बड़ हो जाती है तो आप विरेचक आदि द्वारा उसे ठीक करते हैं। बार-बार शौच जाना असुविधाजनक तो लगता है, परन्तु अन्त में पेट हल्का हो जाता है। ठीक यही बात हमारे मन पर भी लागू होती है।

हमारा मन विभिन्न विचारों के बोझ से दबा हुआ है। उसमें कुंठायें, वर्जनायें, विखण्डित मनस्कता और द्वन्द्व भरे पड़े हैं। चिन्ताएँ, वासनाएँ,

परेशानियाँ, प्रेम, घृणा, भय, असुरक्षा और न जाने क्या-क्या उसे उद्वेलित करते रहते हैं। इनमें से कुछ स्वप्न तथा बीमारियों के माध्यम से अभिव्यक्त होते रहते हैं। परन्तु ध्यान की प्रक्रिया से इनके निष्कासन द्वारा मन की शुद्धि बड़ी लाभदायक सिद्ध होती है। महर्षि पतंजलि के राजयोग सूत्र का सार यही है।

मनुष्य के लिए यह बड़ा आवश्यक है कि वह अपने व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को न केवल समझे, अपितु उनका नियामक तथा नियंत्रक भी बने। इसके लिए आप सबको प्रतिदिन कुछ आसन और प्राणायाम के साथ दस-पन्द्रह मिनट मंत्र-जप तथा ध्यान अवश्य करना चाहिये।

– 23 सितम्बर 1980, लास पामास, कैनेरी द्वीप

कुण्डलिनी क्या है?

प्रत्येक व्यक्ति को कुण्डलिनी का थोड़ा बहुत ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि यह भविष्य की चेतना का प्रतीक है। मनुष्य की वर्तमान चेतना इन्द्रियों तथा उनके विषयों पर निर्भर है। परन्तु इसके आगे कुण्डलिनी की शक्ति होती है। कुण्डलिनी वह मूलशक्ति है जो प्रत्येक मानव तथा प्राणी में निहित है। यह शक्ति मेरुदण्ड के सबसे निचले हिस्से में स्थित है। मनुष्य शरीर में कुण्डलिनी मल एवं मूत्र द्वारों के बीच स्थित होती है जिसे पेरिनियम कहते हैं। स्त्री शरीर में कुण्डलिनी का स्थान गर्भग्रीवा के पीछे होता है। इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। इस चक्र का भौतिक अस्तित्व एक लघु ग्रन्थि के रूप में होता है, जिसे बाहर निकाल कर दबाया जा सकता है। कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में होती है, यदि आप इस ग्रन्थि को निकाल कर दबायें तो उसमें विस्फोट नहीं होगा।

कुण्डलिनी जागरण के लिए योगाभ्यास द्वारा स्वयं को तैयार करना होगा। इसके लिए आसन, प्राणायाम, क्रियायोग और ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। यदि आप प्राणशक्ति को कुण्डलिनी में पहुँचा सकें, तो वह जागकर सुषुम्ना के रास्ते, जिसे केन्द्रीय नाड़ी संस्थान कहते हैं, मस्तिष्क में पहुँचती है। अपने मार्ग में कुण्डलिनी अनेक चक्रों को बेधती है। इन चक्रों का सम्बन्ध मस्तिष्क के विभिन्न निष्क्रिय केन्द्रों से होता है। कुण्डलिनी के जागरण से मस्तिष्क में एक विस्फोट होता है और उसके समस्त सोए हुए केन्द्र फूल की तरह खिल जाते हैं।

यद्यपि यह कहा जाता है कि कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में रहती है, परन्तु हम सब विकास-यात्रा के विभिन्न बिन्दुओं पर रहते हैं। इसलिए कुछ व्यक्तियों में कुण्डलिनी स्वाधिष्ठान, मणिपुर अथवा अनाहत या किसी अन्य चक्र में भी हो सकती है। मूलाधार में कुण्डलिनी का जागरण और सहस्रार में उसका जागरण दो अलग अवस्थाएँ कहलाती हैं। जैसे ही सहस्रार का सहस्र दल कमल खिलता है, एक सर्वथा नयी चेतना का उदय होता है। हमारी वर्तमान चेतना आत्मनिर्भर नहीं है, क्योंकि हमारे मन को जो सूचनाएँ मिलती हैं उनका माध्यम इन्द्रियाँ होती हैं। यदि आपकी आँखें नहीं हैं तो आप देख नहीं सकते, और यदि कान नहीं हैं तो सुन नहीं सकते। परन्तु जब सर्वोच्च चेतना जाग्रत होती है तो ज्ञान और अनुभव के लिए किसी माध्यम की जरूरत नहीं पड़ती।

कुण्डलिनी योग तंत्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। तंत्र का उद्देश्य कुण्डलिनी का जागरण और उसके माध्यम से चेतना का विकास है। मनुष्य ने कुण्डलिनी की खोज किस प्रकार की? सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य कुछ ऐसी घटनाएँ देखता रहा है – कभी तो वह दूसरों के विचारों को जान जाता था, कभी किसी की

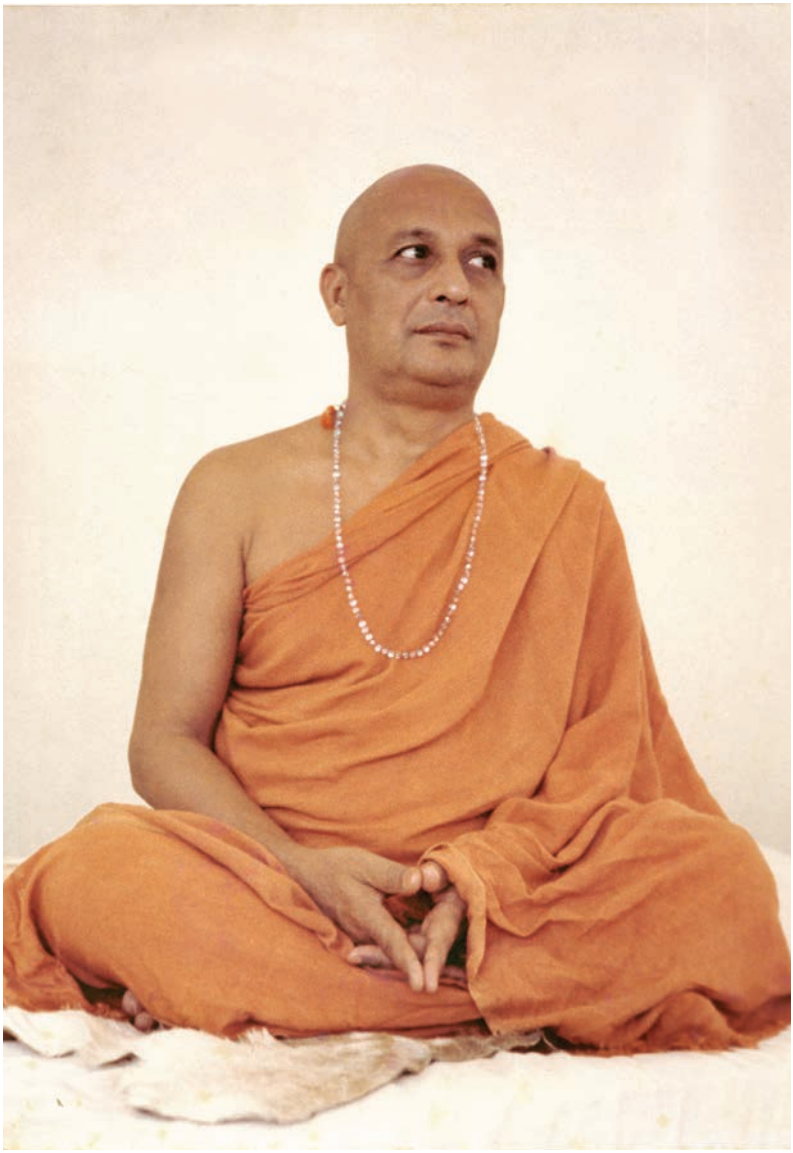

भविष्यवाणी सही उतरती थी, तो कभी उसके स्वप्न वास्तविक घटनाओं में परिवर्तित होते थे। वह इस चमत्कार पर भी विचार करता था कि कुछ लोग सुन्दर कविताओं अथवा संगीत की रचना कर सकते थे, परन्तु अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते थे। एक आदमी लगातार कई दिनों तक युद्ध क्षेत्र में वीरतापूर्वक लड़ता था, तो दूसरा बिस्तर से उठ भी नहीं सकता था। इसलिए उसके मन में यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न क्यों है।

अपने अन्वेषण के दौरान मनुष्य ने यह पाया कि प्रत्येक व्यक्ति में विशिष्ट प्रकार की ऊर्जा होती है। उसने यह भी देखा कि अधिकतर लोगों में यह ऊर्जा सुप्तावस्था में, कुछ में विकासशील अवस्था में तथा बहुत कम लोगों में पूर्ण जाग्रत अवस्था में होती थी। आदि मानव ने इस ऊर्जा को देवी-देवताओं के नाम से पहचाना। तत्पश्चात् उसने प्राण की खोज की, तो इसे प्राणशक्ति कहा गया और इसी शक्ति को तंत्र में कुण्डलिनी नाम दिया गया।

मनुष्य ने शक्ति के इस महान् सुप्त स्रोत को जाना जिसे कुण्डलिनी के जागरण द्वारा मुक्त किया जा सकता है। ऐसा सोचकर उसने इसके जागरण की युक्तियों की खोज की। वैदिक काल में कुण्डलिनी के जागरण के लिये सोम का प्रयोग किया जाता था, परन्तु बाद में जब सोम का दुरुपयोग होने लगा तो उसका प्रयोग बन्द कर दिया गया। अब तो हालत यह है कि हम ठीक से यह भी नहीं जानते कि वास्तव में सोम क्या था। उसके बाद उन्होंने अग्नि की पूजा की और यज्ञ करने लगे, तपस्या तथा आसन-प्राणायाम करने लगे। दक्षिण तथा वाम तंत्र की साधना और उसके पश्चात् 'वेदान्त' का अध्ययन होने लगा। सबके अन्त में मनुष्य ने यह अनुभव किया कि भक्ति कुण्डलिनी का सुनिश्चित मार्ग है।

भक्ति के साथ एक समस्या थी – हर व्यक्ति इसका विकास नहीं कर पाता था। विरले लोगों में ही ईश्वर के लिए स्वतः प्रेरित निष्काम प्रेम होता है। इसलिए कुण्डलिनी जागरण के लिये तीन विधियों को उपयुक्त पाया गया। इनमें पहला योग, दूसरा तंत्र तथा तीसरा ध्यान का मार्ग बताया गया। ध्यान वस्तुतः वेदान्त, एकाग्रता तथा चिन्तन आदि के द्वारा स्वयं को ब्रह्म मानने का मार्ग है। योग के अन्तर्गत हठयोग, लययोग तथा अन्य योगों को रखा गया। तंत्र में दक्षिण तथा वाम मार्गों का और क्रियायोग का विकास हुआ। कुण्डलिनी जागरण की अनेक युक्तियों में क्रियायोग को सर्वोत्तम माना गया है।

– 26 सितम्बर 1980, तेनेरिफे, केनेरी द्वीप

कुण्डलिनी जागरण तथा समाधि

महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में कहीं भी कुण्डलिनी का उल्लेख नहीं मिलता, क्योंकि वह कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से कुण्डलिनी योग की चर्चा नहीं करते। किसी भी संत-महात्मा या ऋषि-मुनि द्वारा इस विषय की चर्चा नहीं की गयी। कुण्डलिनी प्रमुखतः तंत्र का विषय है। पतंजलि के योग सूत्रों की रचना छब्बीस सौ वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध के काल में हुई। उसके चार सौ वर्ष बाद दार्शनिकों का युग आया। उस समय कुण्डलिनी के प्रति लोगों की कोई अच्छी राय नहीं थी, क्योंकि लोग उन शक्तियों का दुरुपयोग करते तथा भोले-भाले लोगों का शोषण करते थे। इसलिए जान-बूझकर तांत्रिक शब्दावली का उपयोग टाला जाता था, परन्तु कुण्डलिनी के ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिये भिन्न भाषा का प्रयोग किया जाता था।

महर्षि पतंजलि के राजयोग में समाधि की अवस्था के विकास पर जोर दिया गया है। समाधि को सर्वोच्च चेतना कहते हैं। सर्वप्रथम इन्द्रिय चेतना, उसके बाद मानसिक चेतना, परामानसिक चेतना और अन्त में आत्मचेतना आती है। ध्वनि, रूप, स्पर्श, स्वाद और गंध की चेतना को इन्द्रिय चेतना कहते हैं। देश-काल की चेतना मानसिक चेतना कहलाती है। परामानसिक चेतना एक प्रक्रिया है, अनुभव की शृंखला है। जिस प्रकार 'बचपन' एक लम्बी समयावधि है, उसी प्रकार समाधि भी किसी खास अनुभव को नहीं, अपितु अनुभवों की एक शृंखला को कहते हैं जो एक-से-दूसरे स्तरों पर होते हैं।

इसलिये पतंजलि समाधि को तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं। इनमें से प्रथम को सविकल्प समाधि कहते हैं। इसकी चार अवस्थाएँ होती है – वितर्क, विचार, आनन्द तथा अस्मिता। समाधि की दूसरी श्रेणी असम्प्रज्ञात कहलाती है। इसमें कोई चेतना नहीं होती। तीसरी को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। इसमें एक तरह की स्थिरता रहती है।

समाधियों के उपर्युक्त नाम मन की विशिष्ट अवस्था की ओर संकेत करते हैं। मानसिक चेतना का विलोप पलक झपकते नहीं होता। यह एक समय-साध्य प्रक्रिया है। इसमें एक प्रकार की चेतना का विकास और दूसरी का क्षय होता है। सामान्य चेतना धीरे-धीरे विलुप्त होती है और उसके स्थान पर

नयी चेतना विकसित होती है। इस प्रकार मन की दो अवस्थाओं के बीच समानान्तर क्रिया-प्रतिक्रिया होती है।

किस बिन्दु पर ध्यान की समाप्ति और समाधि का प्रारम्भ होता है? इस बिन्दु की ओर स्पष्ट संकेत नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक ऐसी अवस्था आती है जहाँ ध्यान और समाधि दोनों साथ-साथ चलते हैं। जैसे यह बताना कठिन है कि किस दिन युवावस्था समाप्त होती है और वृद्धावस्था प्रारम्भ होती है। इस प्रश्न का जो उत्तर होगा, वही ध्यान और समाधि के संबंध में भी लागू होता है। इसी प्रकार आप पूछ सकते हैं कि सविकल्प समाधि किस बिन्दु पर समाप्त होती है और असम्प्रज्ञात कब प्रारम्भ होती है? ऐसे ही पूछा जा सकता है कि कब असम्प्रज्ञात समाप्त होती है और निर्विकल्प प्रारम्भ होती है? समाधि की प्रक्रिया अनवरत होती है। एक अवस्था कब खत्म और दूसरी कब प्रारम्भ होती है, इसका पता लगाना मुश्किल है। रूपान्तरण की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चलती है। आपकी चेतना धीरे-धीरे बदलती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाधि और कुण्डलिनी जागरण में क्या अन्तर है? जहाँ तक मैं समझता हूँ, एक ही अनुभव को दो तरह से समझाया गया है। जब पतंजलि समाधि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते हैं, तो वास्तव में वे कुण्डलिनी अथवा आध्यात्मिक चेतना के विकास की ही बात करते हैं।

तंत्र-शास्त्र में सहस्रार चक्र चेतना का सर्वोच्च बिन्दु कहा गया है। अपने राजयोग में महर्षि पतंजलि चेतना के सर्वोच्च बिन्दु को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। अब यदि आप निर्विकल्प समाधि और सहस्रार के वर्णन को पढ़ें तो आपको लगेगा कि दोनों में बड़ी समानता है। इसी प्रकार यदि आप समाधि तथा कुण्डलिनी जागरण के अनुभवों की तुलना करें, तो आपको इनमें कोई अन्तर नहीं मिलेगा। साथ ही राजयोग तथा कुण्डलिनी योग के अभ्यासों में भी बहुत समानता मिलती है।

राजयोग बौद्धिक है। उसका दर्शन से निकट का सम्बन्ध है। तंत्र भावनात्मक है। उसकी युक्तियों का सम्बन्ध व्यक्ति की भावना से होता है। दोनों में यही झीना-सा अन्तर है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, कुण्डलिनी जागरण और समाधि एक ही अवस्था तथा अनुभव के दो नाम हैं। यदि आप महात्मा बुद्ध तथा अन्य ऋषि-मुनियों की शिक्षाओं का अध्ययन करें तो देखेंगे कि उन्होंने अलग-अलग ढंग से एक ही बात कही है।

– सितम्बर 1980, बार्सीलोना, स्पेन

शिष्यों की तीन श्रेणियाँ

गुरु अथवा ईश्वर के प्रति समर्पण का तात्पर्य शिष्य का निष्क्रिय हो जाना नहीं है। इसका तात्पर्य गुरु और शिष्य के बीच पूर्ण तादात्म्य की स्थापना है। आपके शारीरिक तथा दैनिक क्रियाकलाप पूर्ववत् निर्बाध गति से चलते हैं, परन्तु जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आता है वह है, शिष्य का हर समय यह विचार करना कि मैं तथा मेरे गुरु अभिन्न हैं।

शिष्य तीन प्रकार के होते हैं – गृहस्थ, संन्यासी तथा अन्तरंग शिष्य। तीसरे प्रकार के शिष्यों की संख्या बड़ी कम होती है। इन तीनों प्रकार के शिष्यों में समर्पण की भावना का स्वरूप तथा अनुपात भिन्न होता है। गृहस्थ शिष्यों का समर्पण भक्ति के द्वारा होता है। संन्यासी शिष्यों का समर्पण अपनी इच्छाओं, वासनाओं तथा भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं के त्याग द्वारा पूर्ण होता है, जबकि अन्तरंग शिष्य को समर्पण के लिये समस्त वस्तुओं का परित्याग करना होता है।

गुरु अपने शिष्यों को विभिन्न उद्देश्यों के लिए निर्दिष्ट करता है। वह अपने गृहस्थ शिष्यों को इस प्रकार शिक्षा देता है कि मन की शान्ति के साथ उन्हें जीवन की सही समझ हो। इसलिए यदि गृहस्थ शिष्य गुरु के प्रति भक्तिभाव रखे तो उतना ही पर्याप्त है। उनके समर्पण का यह मतलब नहीं होता कि वे गुरु के लिए अपने व्यवसाय तथा पारिवारिक दायित्वों का परित्याग कर दें। यदि ऐसे शिष्य गुरु को भक्तिभाव समर्पित करें, तो वे उनकी बड़ी सहायता कर सकते हैं।

इसके बाद शिष्यों की दूसरी श्रेणी में संन्यासी आते हैं, जो गुरु-आश्रम अथवा उसकी शाखाओं में गुरु के आदेशानुसार रहते हैं। यहाँ कम-से-कम बारह वर्षों तक प्रत्येक संन्यासी शिष्य की समस्त गतिविधियाँ गुरु के नियंत्रण में होनी चाहिए क्योंकि गुरु को एक सम्पूर्ण मानव को रूपान्तरित करना होता है। उसे न केवल उसकी विचार प्रक्रिया को बदलना होता है, बल्कि उसके खाने-पीने, सोने-जागने तथा बातचीत की आदतों को भी बदलना होता है। इस प्रकार बारह वर्षों तक संन्यासी शिष्य गुरु की कड़ी देखरेख में रहता है, ताकि जब वह गुरु आश्रम से बाहर आए तो उसका समूचा व्यक्तित्व रूपान्तरित हो चुका हो। तब वह अपने गुरु की शिक्षा का आदर्श संदेशवाहक हो सकता है। यह दूसरे प्रकार का शिष्य हुआ।

तीसरे प्रकार के शिष्य इतने कम होते हैं कि उन्हें उँगलियों पर गिना जा सकता है। इन्हें अन्तरंग शिष्य कहते हैं जिनका चयन गुरु अपने लिये करते हैं। सर्वप्रथम गुरु उनकी परीक्षा लेते हैं और जो इसमें खरे उतरते हैं उन्हें अन्तरंग शिष्य बनाते हैं। उनके जीवन की हर गतिविधि, जैसे – सोने-जागने, खाने-पीने, सोचने, उनकी भावनाओं तथा वासनाओं पर गुरु कड़ी नजर रखते हैं। जिस प्रकार आप स्विच पर नियंत्रण रखते हैं, गुरु भी शिष्य पर अपना पूरा नियंत्रण रखते हैं। चूँकि इनकी संख्या बहुत कम होती है, ये गुरु की ऊर्जा के वितरण के प्रमुख स्तंभ होते हैं। गुरु के ज्ञान, उनकी शिक्षा तथा आदर्शों का प्रचार-प्रसार करने वाले ये शिष्य छोटे पावर-हाउस की भूमिका निभाते हैं, इसी कारण इनकी संख्या कम होती है। किसी गुरु के संन्यासी शिष्यों की संख्या सैकड़ों तथा गृहस्थ शिष्यों की हजारों में हो सकती है।

अन्तरंग शिष्य गुरु की ऊर्जा सम्प्रेषण के शक्तिशाली स्तंभ, संन्यासी शिष्य गुरु के उपदेश तथा आदर्श को जन-जन तक पहुँचाने वाले दूत तथा गृहस्थ शिष्य गुरु की शिक्षाओं तथा आदर्शों को जीवन में व्यवहार में लाने वाले होते हैं। समर्पण कैसा हो, यह शिष्य की श्रेणी पर निर्भर करता है। प्रथम श्रेणी के शिष्य भक्ति साधना करते हैं, दूसरे प्रकार के शिष्य गुरु के चरणों में अपना जीवन-न्योछावर कर देते हैं, जबकि तीसरे प्रकार के अन्तरंग शिष्यों का सर्वस्व गुरु को अर्पित होता है। चुनाव शिष्य पर निर्भर है। यदि वह अपना सब कुछ गुरु को अर्पित करना चाहे तो इससे किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

– सितम्बर 1980, बार्सीलोना, स्पेन

बोगोता में पत्रकार-वार्ता

आप यहाँ बोगोता में 'फेस्टिवल ऑन योगा एण्ड हेल्थ' का संचालन करने आए हैं, कृपया यह बताने का कष्ट करें कि क्या सचमुच योगाभ्यास अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति में सहायक होता है?

यद्यपि प्रारम्भ में लोगों के मन में योग के प्रभाव के बारे में शंकाएँ और संदेह थे, लेकिन अब स्थिति वैसी नहीं है। हाल के वर्षों में विज्ञान ने योग पर जो खोजें की हैं, उनका निष्कर्ष यह है कि योगाभ्यास का स्वास्थ्य और मन पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त विश्व में योग विद्यालयों की बढ़ती संख्या यह प्रमाणित करती है कि योगाभ्यास लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार ला रहा है।

क्या योगाभ्यास प्रत्यक्ष रूप से शरीर को प्रभावित करता है अथवा शरीर पर उसका प्रभाव मन के माध्यम से होता है?

योग विज्ञान दोनों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिये, हठयोग की क्रियाएँ पहले शरीर को प्रभावित करती हैं और फिर यह प्रभाव मन पर पड़ता है। इसी तरह राजयोग के अभ्यास पहले मन को प्रभावित करते हैं और फिर

यह प्रभाव शरीर पर पड़ता है। इस प्रकार योग के प्रभाव शरीर से मन पर तथा मन से शरीर पर पड़ते हैं।

ऐसे व्यक्ति के लिये जो शरीर और मन दोनों से रोगी हो, आप कौन-से अभ्यास सुझायेंगे?

ऐसे व्यक्तियों को मेरी राय यह है कि वे प्रतिदिन थोड़ा समय योगासनों के लिए तथा थोड़ा समय यौगिक शिथिलीकरण में दें।

योग के दृष्टिकोण से आज की मानव-जाति किस रोग से ग्रस्त है?

आधुनिक मानव की मुख्य परेशानी मानसिक उथल-पुथल है, जो उसके भौतिक स्वास्थ्य को भी बुरी तरह प्रभावित करती है। मनुष्य का अपने मन के व्यवहारों पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया है। चूँकि वे मन के अनुसार चलते हैं, उन्हें चिन्ता, परेशानी, भय, क्रोध, लोभ, हताशा, उदासी तथा स्नायविक विघटन जैसे कटु अनुभव होते हैं।

क्या आप बता सकते हैं कि यह बीमारी कब से प्रारम्भ हुई?

बीमारियाँ तो सदा ही मनुष्य के साथ लगी रहती हैं, परन्तु पिछली कुछ शताब्दियों से इनकी संख्या और रफ्तार बढ़ गई है।

क्या आप ऐसा मानते हैं कि मानव जन्म से ही अच्छा अथवा बुरा होता है?

मनुष्य का वास्तविक स्वभाव पवित्र तथा सकारात्मक होता है, परन्तु जैसे ही वह जीवन में विभिन्न परिस्थितियों तथा वातावरण के संपर्क में आता है, कुछ समय के लिए अपने मूल स्वभाव को भूल जाता है तथा अवांछनीय व्यवहार करता है।

बाह्य जगत् में जब हमें किन्हीं परिस्थितियों से निपटना होता है तो क्या हम उनका आमने-सामने मुकाबला करें अथवा अन्तर्मुखी हो उनसे पलायन कर जायें? ऐसी स्थिति में योग कौन-सा रास्ता सुझाता है?

जीवन की बाह्य परिस्थितियों का सामना करने के लिये योग तथा ध्यान के नियमित अभ्यास से मन को मजबूत तथा संकल्पवान् बनाना चाहिए।

ध्यान को परिस्थितियों से पलायन का रास्ता नहीं कह सकते। ध्यान वह प्रक्रिया है जो मन को सूक्ष्मता और वांछनीय गुणवत्ता प्रदान करती है। मन के परिवर्तित गुणों से आप कठिन परिस्थितियों का दृढ़तापूर्वक सामना कर सकते हैं। वह भी न केवल शान्ति और सौम्यता से, बल्कि अधिक विनम्रता एवं संभावनाओं के साथ।

उच्च शक्तियों के विषय में योग क्या कहता है?

योग एक विज्ञान है। वह अनन्तकाल से पदार्थ और ऊर्जा रूपी दो महान् शक्तियों के अस्तित्व को मानता आया है। जब इन दो शक्तियों में परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती है तो न केवल पृथ्वी पर बल्कि समूचे ब्रह्माण्ड में सृजन होता है।

आजकल चारों ओर युद्ध, हिंसा और विनाश की चर्चा है, आपकी राय में दुनिया किस ओर बढ़ रही है?

आपने इतिहास पढ़ा है। हर युग में युद्ध हुए हैं और आगे भी होंगे। परन्तु इसके साथ-ही-साथ मनुष्य की चेतना भी रूपान्तरित तथा विकसित हो रही है। आज सारे संसार के मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्रकृति के प्रति सचेत दिखते हैं। मृत्यु तथा विनाश, वर्तमान तथा भविष्य में घटित होने के साथ-ही-साथ, मनुष्य का चेतनात्मक विकास उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा की किरण है।

प्राचीनकाल के योगी पदयात्रा करते थे, परन्तु क्या कारण है कि आजकल के योगी कार, रेलगाड़ी और वायुयान से विश्व-भ्रमण करते हैं?

संत-महात्मा सदा ही लोगों के बीच पैदल घूमते हैं। भारत में इस परम्परा को परिव्रजन कहते हैं। हर संन्यासी अपने संन्यास जीवन में कुछ वर्ष निरन्तर भ्रमण करता है। सन् 1956 से 63 तक मैं भी परिव्राजक था। उस काल में मैंने भारत, बर्मा, श्रीलंका, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा अफगानिस्तान की पैदल यात्राएँ की थीं।

परन्तु 1968 के बाद मेरे जीवन का उद्देश्य विश्व के कोने-कोने में योग का सन्देश पहुँचाना बन गया है। इसलिए अब मुझे कम समय में अधिक लोगों से सम्पर्क करना होता है, इसलिए मैं कार, रेलगाड़ी तथा वायुयान से यात्रायें करता हूँ।

क्या विभिन्न देशों के लोगों को योग के प्रति किसी प्रकार की आपत्ति है?

अभी तक हमलोगों ने जितने भी देशों की यात्राएँ की हैं वहाँ हमारे प्रवेश, घूमने-फिरने, योग सिखाने, मंत्र तथा संन्यास दीक्षा देने पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई गई है।

हाँ, हम राजनीतिक चर्चा से स्वयं को बहुत दूर रखते हैं। समाजवादी देशों में हम वहाँ के राजनीतिज्ञों को यह अवश्य बताते हैं कि वे किस प्रकार अपने जीवन में योगाभ्यास का समावेश कर सकते हैं। इस बात से उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। यदि हम विदेशों में राजनीतिक मतभेदों की चर्चा करें तो निश्चय ही हमें कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

यदि राजनीतिज्ञ योगाभ्यास प्रारम्भ करें तो क्या वे राजनीति से अलग हो जायेंगे अथवा उसमें गुणात्मक सुधार लायेंगे?

जब कोई राजनीतिज्ञ, व्यवसायी, गृहस्थ, शिक्षक अथवा कारखाने का मजदूर योगाभ्यास प्रारम्भ करता है तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि वह अपनी जीविका त्याग दे। जैसे-जैसे उसका अभ्यास आगे बढ़ता है, उसका मन सुधरता तथा दृष्टिकोण में गहराई आती है। उसके कार्य करने के ढंग में निपुणता आती है। यदि वह राजनीतिज्ञ है, तो वह एक अन्तर्दृष्टि सम्पन्न उत्तम राजनीतिज्ञ होगा। यदि वह व्यवसायी है, तो कुशल व्यापारी होगा, उसके

फैसले कभी भी उसके व्यवसाय के लिए अहितकर नहीं होंगे। प्राध्यापक और शिक्षक सशक्त अभिव्यक्ति और अप्रतिम बुद्धि के धनी होंगे। गृहस्वामी घर और परिवार की व्यवस्था कहीं अधिक कुशलतापूर्वक करेंगे।

क्या आप कुछ ऐसे जाने-माने व्यक्तियों के नाम बता सकते हैं जो नियमित योगाभ्यास करते हैं?

विश्वविख्यात वायलिन वादक यहूदी मेनुहीन, भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी, विंडसर के ड्यूक, ब्रिटेन की महारानी एलिज़ाबेथ और पॉप परम्परा के जनक जॉर्ज हैरिसन नियमित योगाभ्यास करते हैं। यह तो मैंने आपको कुछ ही जाने-माने व्यक्तियों के नाम गिनाए हैं। इनके अतिरिक्त अनगिनत लोग हैं जो नियमित योगाभ्यास करते हैं।

आत्मशक्ति द्वारा आरोग्य पर आपके क्या विचार हैं?

मानसिक आरोग्य मन की विलक्षण शक्ति है। ऐसा मन जो नियमित योगाभ्यास द्वारा निर्मल हो जाता है, अपने अथवा अन्य लोगों की रोगमुक्ति के लिए सकारात्मक आरोग्य तरंगें प्रेषित कर सकता है। इससे स्वयं या अन्य को आरोग्य प्रदान कर सकता है, जिससे तत्काल लाभ होता है।

क्या योग परामनोविज्ञान से सहमत है?

हाँ, परामनोविज्ञान भी योग की एक शाखा है।

गुरु सबसे अच्छा कौन-सा मार्गदर्शन कर सकता है?

गुरु प्रेम करने तथा अपने भीतर जाने का सरलतम, श्रेष्ठ उपाय बताता है, और जीवन की सच्ची वास्तविकताओं पर प्रकाश डालता है।

क्या गुरु होना कष्टदायक होता है?

कुछ लोगों के लिए हो सकता है परन्तु मेरे लिए नहीं, क्योंकि मैं स्वयं को गुरु मानता ही नहीं। जो भी लोग मेरे संपर्क में आते हैं उनके साथ मेरा सम्बन्ध एक मार्गदर्शक मित्र अथवा दार्शनिक जैसा होता है। यह थकाने वाला नहीं, बल्कि विश्राम, सन्तोष तथा आनन्द देने वाला सम्बन्ध है। जब भी मैं यह शरीर त्यागूँगा, कागज के एक टुकड़े पर यह लिख सकूँगा कि मैं पूरी शान्ति के साथ मरा।

क्या कारण है कि योग पश्चिम में बड़ा लोकप्रिय है?

पूर्व में टेक्नोलॉजी और पश्चिम में योग लोकप्रिय है। इसका मुख्य कारण यह है कि पश्चिम के देशों के पास आध्यात्मिक परम्परा और पूर्वी देशों के पास तकनीक और विज्ञान का अभाव रहा है। मनुष्य को इन दोनों की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए पश्चिम योग को तथा पूर्व टेक्नोलॉजी को अपना रहा है। इस प्रकार दोनों अपनी कमियों को पूरा कर रहे हैं।

पाश्चात्य देशों में योग के प्रचार-प्रसार में आपको किन बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा?

मुझे इस कार्य में कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई, क्योंकि पश्चिम के लोग शान्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान के लिए लालायित हैं और पूर्व के देशों में तकनीकी संस्कृति और विज्ञान की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसीलिए पश्चिम के देशों को अपने ज्ञान-विज्ञान का पूर्व के देशों में निर्यात करने में और मुझे आध्यात्मिक संस्कृति का पश्चिम को निर्यात करने में जरा भी कठिनाई अनुभव नहीं हुई।

क्या पूर्व से पश्चिम को जिस संस्कृति का निर्यात हो रहा है, उसमें यहाँ पहुँचते-पहुँचते कुछ विकृति नहीं आ जाती?

जब यौगिक संस्कृति का पश्चिम के देशों को निर्यात होता है, तो उसमें कुछ अकुशल व्यक्तियों द्वारा विकृति लाने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। परन्तु सामान्य रूप से बहुसंख्यक लोग, जिन्हें आध्यात्मिक जीवन की प्यास है, वे निश्चित रूप से इन विकृतियों को शीघ्र ही पकड़ लेंगे। फिर वे योग की सच्ची वास्तविकताओं का पता लगायेंगे, जिससे विकृतियों का निराकरण होगा। आजकल ऐसा ही हो रहा है।

क्या आप समझते हैं कि धार्मिक शिक्षा से लोगों को वही लाभ मिल सकते हैं जो योग द्वारा प्राप्त होते हैं?

एक कमजोर शरीर तथा अस्त-व्यस्त मन द्वारा धर्म का सही ढंग से पालन नहीं हो सकता। इसके लिए नियमित रूप से लगन के साथ योगाभ्यास अवश्य करना चाहिए। योगाभ्यास द्वारा मन की शान्ति, एकाग्रता और प्रार्थना के भाव आते हैं।

महात्मा ईसामसीह और उनकी शिक्षाओं पर आपके क्या विचार हैं?

महात्मा ईसा और उनकी शिक्षाओं के बारे में मेरे विचार वैसे ही हैं जैसे एक ईसाई के होने चाहिए। उनकी शिक्षाओं का उद्देश्य सर्वोच्च सत्ता का साक्षात्कार तथा आध्यात्मिक अनुभव की प्राप्ति कराना था।

आप किस धर्म के अनुयायी हैं?

मेरा जन्म एक हिन्दू परिवार में हुआ था, परन्तु जब से मैंने संन्यास लिया, मेरा कोई धर्म नहीं है, चूँकि संन्यास के बाद व्यक्ति का धर्म और सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। संन्यासी सभी धर्मों, विश्वासों, संत-महात्माओं तथा धार्मिक ग्रन्थों के प्रति सम्मान और आदर का भाव रखता है। इसलिए मैं रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के लोगों के साथ रोमन कैथोलिक, मुसलमानों के साथ मुसलमान तथा हिन्दुओं के साथ हिन्दू होता हूँ। पर वास्तव में मैं कुछ भी नहीं हूँ।

किसी धर्म को मानने का क्या उद्देश्य होना चाहिए?

किसी धर्म के पालन का अन्तिम उद्देश्य मन-मस्तिष्क के खिड़की-दरवाजे खोलना और सर्वोच्च चेतना की उपलब्धि होना चाहिये।

आपकी व्यक्तिगत आवश्यकतायें क्या हैं?

जब तक मैं इस शरीर में हूँ, मुझे इसकी देखभाल करना जरूरी है। न तो मेरा कोई परिवार है, न तो बैंक में कोई खाता और न ही कोई व्यक्तिगत संपत्ति है।

यदि आप आध्यात्मिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हैं तो आप अपना भरण-पोषण कैसे करते हैं?

मेरी भौतिक आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित हैं। मुझे इस शरीर से कार्य लेने के लिये थोड़े भोजन की आवश्यकता होती है, जो मुझे आसानी से मिल जाता है। मुझे यदि दो धोतियाँ मिल जायें, तो उनसे मेरा कुछ वर्षों तक काम चल जाता है। नियम यह है कि आपकी आवश्यकताएँ जितनी कम होंगी, लोगों पर आपकी निर्भरता भी उतनी ही कम होगी।

क्या योग प्रेमी अथवा प्रेमिका को स्वीकार करता है? क्या कभी आपने ऐसे प्रेम का अनुभव किया है?

देखिये, मुझे लोगों से इतना प्रेम मिला है और मैंने उन्हें इतना बाँटा है कि अब मुझे किसी एक से प्रेम पाने अथवा उसे प्रेम देने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। मुझमें प्रेम का भण्डार है और लोगों से मिलता भी रहता है। परन्तु मैं यह जानता हूँ कि मैं सिर्फ किसी एक के साथ प्रेम के आदान-प्रदान के लिए नहीं बँध सकता। इस प्रकार मेरी राय में प्रेम योग विरोधी नहीं है। योगाभ्यास द्वारा प्रेम के गुण और परिणाम में सुधार आता है। आप न केवल अपनी प्रेमिका अथवा प्रेमी को, बल्कि असंख्य लोगों को प्रेम का उपहार दे सकते हैं। खैर, सभी मेरे प्रेमी और प्रेमिका हैं।

यदि आप विवाह करना चाहें, तो क्या कोई नियम आपको ऐसा करने से रोक सकते हैं?

नहीं, मैं जब चाहूँ तब विवाह कर सकता हूँ। इसके लिए धर्म मेरा बहिष्कार नहीं कर सकता। मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है और धर्म उसे बाँध नहीं सकता।

मैंने स्वयं संन्यासी बनने का निर्णय लिया था, किसी ने मुझ पर संन्यास थोपा नहीं। यदि मैं कभी यह सोचूँ कि जीवन में उच्च मूल्यों की प्राप्ति विवाह द्वारा बेहतर हो सकती है, तो मुझे विवाह करने में कतई झिझक नहीं होगी। कोई भी धार्मिक नियम-कानून मुझे विवाह करने से रोक नहीं सकता।

क्या आपने कभी यह सोचा नहीं कि विवाह की आपके जीवन में सर्वोत्तम भूमिका हो सकती है?

मैंने इस विषय पर गहन चिन्तन किया था कि मेरे जीवन की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति का माध्यम विवाह होगा अथवा संन्यास। अन्ततोगत्वा मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि मेरे लिये विवाह उपयोगी नहीं होगा, क्योंकि मुझे उसमें कोई सार नहीं दिखा।

आप कितने घण्टे सोते हैं?

मुझे जब भी समय मिलता है, झपकी ले लेता हूँ। परन्तु सामान्य रूप से मैं तीन-चार घण्टे सोता हूँ।

योगाभ्यास के लिए अनुशासन आवश्यक है अथवा त्याग?

अनुशासन ऊपर से थोपा जाता है और त्याग अपने आप भीतर से उत्पन्न होता है। योग अनुशासन है, परन्तु शिष्य उसका अभ्यास त्याग के रूप में करता है। अनुशासन सामाजिक व्यवस्था है और त्याग एक आन्तरिक स्वतःस्फूर्त्त भावना।

क्या आप नयी आध्यात्मिक पीढ़ी पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

आज समूचे संसार में लोग योगाभ्यास कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप वे आध्यात्मिक बन रहे हैं। उनका मन और चेतना बदल रही है। कुछ समय बाद यही लोग भविष्य की पीढ़ियों पर प्रभाव छोड़ेंगे। इससे आनेवाली पीढ़ियों का आधार भौतिकवादी नहीं, बल्कि आध्यात्मिक होगा। वह पीढ़ी नवचेतनायुक्त जाति कहलाएगी।

– अक्टूबर 1980, बोगोता, कोलोम्बिया

सत्संग तथा मनोचिकित्सा

मनोचिकित्सक तथा गुरु, दोनों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। वास्तविकता तो यह है कि जहाँ मनोचिकित्सक की भूमिका समाप्त होती है, वहाँ आध्यात्मिक गुरु की भूमिका प्रारम्भ हो जाती है। अतः दोनों की तुलना करने की अपेक्षा बेहतर यह होगा कि हम इन दोनों को एक-दूसरे के न केवल निकट लायें, अपितु सम्बद्ध करें।

गुरु भी मनोचिकित्सक का कार्य कर सकते हैं, परन्तु यह उनका वास्तविक प्रयोजन नहीं है। मनोचिकित्सक आपको जीवन के किसी संकट से उबार सकता है, परन्तु जहाँ तक गुरु का सम्बन्ध है, मनोचिकित्सा स्वतःस्फूर्त्त ढंग से गतिशील होती है। गुरु शिष्य के साथ अपने सम्बन्ध और अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभव तथा मन की प्रकृति के ज्ञान का उपयोग कर शिष्य को उसकी विशेष मानसिक उलझनों से बाहर निकाल लेते हैं, और उसे आध्यात्मिक जीवन प्रदान करते हैं।

इसी कारण प्रारम्भ से ही कुछ नियम एवं अनुशासन निर्धारित किये गये हैं। हर व्यक्ति गुरु नहीं बन सकता। गुरु बनने के पूर्व आपको शिष्यत्व में पूर्णता प्राप्त करनी होगी। विद्यार्थी रहे बिना आप कैसे विश्वविद्यालय का प्राध्यापक बनने की कल्पना कर सकते हैं? यदि आपने कुछ योग साहित्य का अध्ययन कर लिया है, कुछ योग शिविरों में सम्मिलित हुए हैं, तो इसके आधार पर कैसे योग्य गुरु बनने का दावा कर सकते हैं? यह बड़ी ही खतरनाक स्थिति होगी। ऐसे गुरुओं को ही मनोचिकित्सक की आवश्यकता है।

यदि आप किसी की मानसिक चिकित्सा कर उसे छोड़ दें, तो उसकी समस्या तो जहाँ की तहाँ ही बनी रहेगी। यह सही है कि उचित समय पर मन की चिकित्सा होनी चाहिए, परन्तु इसका कोई अंत नहीं है। मेरा मत यह है कि मन की चिकित्सा नहीं, उसके परे जाने की आवश्यकता है। मन त्रिगुणों का समुच्चय है तथा ये गुण निरंतर मन को प्रभावित करते रहते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि शिष्य ज्ञान तथा अनुभव के नये साधन विकसित करे, जिससे वह अपने मन की समस्याओं से निपट सके।

यद्यपि हम कभी-कभी सत्संग को समूह-चिकित्सा तुल्य मान बैठते हैं तथापि यह उचित नहीं है। संस्कृत के मूल धातु 'सत्' का अर्थ होता है सत्यता, दिव्यता तथा पवित्रता, इसका सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा से होता है। सत्संग का अर्थ अनेक लोगों की संगति में रहना कदापि नहीं है। लोगों के समूह को 'संघ' कहते हैं, जबकि सत्संग का अर्थ 'सत्य' के सान्निध्य में रहना है।

सत्संग के विभिन्न प्रकार होते हैं। आप चाहें तो नेत्र बन्द कर अकेले स्वयं से सत्संग कर सकते हैं। जब आप किसी आध्यात्मिक ग्रंथ का स्वाध्याय करते हैं तो वह भी सत्संग ही कहलाता है। जब आप समूह में बैठकर प्रभु के गुणगान अथवा उनकी चर्चा सुनते हैं तो वह भी सत्संग का एक प्रकार है। संत-महात्माओं का चरित्र-श्रवण भी सत्संग का एक पक्ष है।

सत्संग में आप भजन अथवा ध्यान भी कर सकते हैं, परन्तु यह सब सत्संग नहीं, बल्कि सत्संग की कुछ विधियाँ हैं। सत्संग में सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि उसमें परम सत्य, दिव्यता अथवा परम सत्ता से सम्बन्धित विचार निरंतर गतिशील रहें।

मुझे ऐसे अनेक समूहों की जानकारी है, जिसमें लोग कुछ अभ्यासों द्वारा आपस में एक-दूसरे की सहायता करते हैं। इसका सरल वैज्ञानिक स्पष्टीकरण यह है कि यदि आप अनेक दीवाल घड़ियों के बीच एक बड़ी घड़ी रख दें तो

आप देखेंगे कि कुछ समय तक उनके पेण्डुलमों की गति में कोई तारतम्य नहीं होता। परन्तु थोड़ी देर बाद सब घड़ियों के पेण्डुलमों की गति में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। यह प्रयोग अनेक बार दुहराया गया है। ठीक इसी प्रकार आप कमरे में वायलिन बजायें तो वहाँ रखे अन्य अनेक वायलिनों में उसका स्पन्दन दृष्टिगोचर होता है। यदि आप ध्यानपूर्वक सुनने की कोशिश करें तो पहली वायलिन का स्पन्दन निष्क्रिय वायलिनों को भी स्पन्दित करेगा। यही बात लोगों के उस समूह पर भी लागू होती है, जिसके सदस्य एक-दूसरे की सहायता के उद्देश्य से एकत्र होते हैं।

भारत में ऐसी समूह चिकित्सा की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि भारतीय समाज अपेक्षाकृत अधिक संगठित है। यदि कुछ लोग संयुक्त परिवार अथवा आश्रम के वातावरण में रहते हैं तो वे एक-दूसरे की प्रकृति को अच्छी तरह समझते हैं। वे सामुदायिक जीवन के महत्त्व को जानते हैं। उन्हें अपने मन, उसकी कमजोरियों तथा सीमाओं को समझने का अच्छा अवसर मिलता है।

वर्तमान शताब्दी में पश्चिम के देशों में समूह चिकित्सा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तकनीक बन गयी है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी की परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न थीं। उस काल में परिवार तथा समुदाय इतने बिखरे हुए नहीं थे। परन्तु विगत डेढ़ सौ वर्षों में समाज तथा परिवार टुकड़ों में विभक्त हुए हैं। अतएव समूह चिकित्सा की आवश्यकता आ पड़ी है।

फिर भी यह स्मरण रखें कि हमारा मन ही अन्तिम सत्य नहीं है, क्योंकि मन के परे भी कुछ विद्यमान है। हम केवल मन की ही चर्चा करते हैं, क्योंकि अधिकतर लोगों के लिए मन ही सबसे बड़ी बाधा होता है। वस्तुतः हम जो भी आध्यात्मिक साधनाएँ करते हैं, वे मात्र मन के लिए नहीं होतीं। उनका उद्देश्य ब्रह्माण्डीय आत्मा का अन्वेषण है। अतएव एक सीमा तक ही मनोचिकित्सा वांछनीय तथा लाभकारी होती है। इसके बाद आप उस बिन्दु पर पहुँचते हैं जहाँ इसकी भूमिका समाप्त हो जाती है। विकास के एक निश्चित स्तर पर मनोविश्लेषण सहायक तथा लाभकारी होता है, परन्तु वह भी एक सीमा के बाद बाधक ही सिद्ध होता है, इसलिए उसके भी परे जाना आवश्यक हो जाता है।

– सितम्बर 1980, बार्सीलोना, स्पेन

विवाह अथवा संन्यास

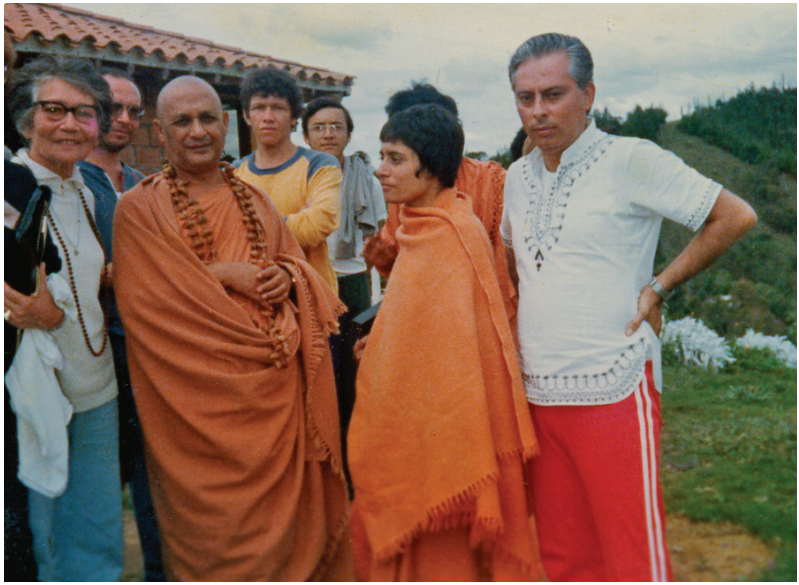

संन्यास वह विशिष्ट मार्ग है जिसमें आपको पारिवारिक जीवन से मुक्त रहना चाहिये। अनेक लोग यह सोचते हैं कि वे एक साथ संन्यास तथा गृहस्थ जीवन बिता सकते हैं। ऐसा सोचना भ्रांति है। यह अव्यावहारिक भी है। संन्यास तथा गृहस्थ जीवन दोनों अपनी-अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों जीवन के उच्च अनुभव तक पहुँचने के लिए निश्चित मार्ग हैं। जब आप गृहस्थ जीवन में संन्यास के आदर्शों को थोपते हैं, तो इसका तात्पर्य यह है कि आप गृहस्थ-जीवन में अपराध-भाव और कुण्ठाओं से ग्रस्त हैं।

गृहस्थ-जीवन में कुछ भी गलत नहीं है। उसमें रहते हुए संन्यास जीवन की बात सोचना उचित नहीं है। चाहे आप संन्यासी हों या गृहस्थ, अपने आश्रम के आदर्शों तथा नियमों का पालन कीजिये। संन्यास और गृहस्थ आश्रम, मनुष्य के स्वभाव, क्षमता और रुचि के अनुकूल दो रास्ते हैं। लोग दो प्रकार के होते हैं। जो मन के पक्के होते हैं, वे किसी से कोई लगाव नहीं रखते। उन्हें धन, सम्पत्ति, पत्नी, बच्चे, प्रेम, तेरे-मेरे की भावनाएँ प्रभावित नहीं कर पातीं। ऐसे लोगों के लिए संन्यास उपयुक्त होता है। इसके विपरीत

दूसरे प्रकार के लोग, जिनका मन डाँवाडोल रहता है, गृहस्थ जीवन के लिए उपयुक्त होते हैं। उन्हें उपर्युक्त चीजों की चाहत होती है। वे सुख और दुःख के झूले में झूलते हैं। उनका परिवार, पारिवारिक दायित्व, सम्पत्ति और व्यवसाय होता है। उनमें भय, क्रोध, लोभ, हताशा, आकर्षण तथा विकर्षण रहता है। ऐसे लोग गृहस्थ जीवन के लायक होते हैं।

गृहस्थ जीवन बाहरी उतार-चढ़ाव और संन्यास जीवन भीतरी उतार-चढ़ाव से निपटने का मार्ग है। संन्यासी की बढ़ईगिरी अपने भीतर तथा गृहस्थ की बाहरी जगत् में चलती है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को संन्यास और कर्मयोग का मर्म समझाते हुए इसी बात पर प्रकाश डालते हैं। गृहस्थ प्रमुखतः कर्मयोगी तथा संन्यासी राजयोगी एवं ज्ञानयोगी होता है। इसलिए आप गृहस्थ हों अथवा संन्यासी, स्वयं को अपराध भावना से कुण्ठित न करें। यदि आपमें संन्यास के लिए तीव्र आकांक्षा है तो मैं आपका सिर मुड़ाकर गेरू धोती देने के लिए तैयार हूँ। यदि बात इसके विपरीत हो तो कभी यह कहने की भूल न करें कि 'मैं गृहस्थ और संन्यासी हूँ', क्योंकि अपनी क्षमता और अपराधी-भाव के बीच भ्रांति उत्पन्न करने के पाश्चात्य तरीके का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है।

एक गृहस्थ व्यक्ति को अपनी स्थिति पर गर्व होना चाहिए। दूसरी ओर संन्यासी को दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए। यदि दोनों में थोड़ी भी हीन भावना अथवा अपराध भावना आई, तो दोनों निश्चित ही पथभ्रष्ट होंगे, अपने मार्ग पर आगे बढ़ना तो दूर रहेगा।

संसार के हर हिस्से में आजकल ऐसे गृहस्थ दिखते हैं जो गेरू वस्त्र पहनते हैं। उनकी पत्नी तथा बच्चे होते हैं। वे इन्हीं वस्त्रों में कार्यालय जाते हैं। मेरी राय में यह उचित नहीं है। मैं समझता हूँ कि ऐसे लोग किसी मानसिक असन्तुलन के शिकार होते हैं। यदि आप में सचमुच संन्यास के प्रति सम्मान तथा आकर्षण है तो आप जीवन में जहाँ भी हों, बाहर आ जाइये। इसके विपरीत यदि आपको अपनी वर्तमान स्थिति पर गर्व हो तो निश्चयपूर्वक वहीं बने रहिये।

एक गृहस्थ के रूप में संन्यासियों का सम्मान कीजिये, उनसे सीखिये, उनके मन तथा हृदय की गहराई देखिये और उनसे कुछ ग्रहण कीजिये। यदि आप संन्यासी हैं तो गृहस्थों की सेवा-सहायता कीजिये, उन्हें योग सिखाइये तथा उनसे गुरु-दक्षिणा लेना न भूलिये!

– 8 अक्टूबर 1980, मेदेयिन, कोलोम्बिया

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा – गंगा बचाओ

पृष्ठ 24

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

स्वामी निरंजन गंगा माँ को मुंगेर योग संगोष्ठी में पधारने का आमंत्रण देते हैं। वे आश्रम आकर, बाल योग मित्र मण्डल द्वारा पर्यावरण की चिंताजनक स्थिति पर प्रस्तुत एक प्रभावी नृत्य-नाटिका का दर्शन करती हैं। बच्चों का संदेश स्पष्ट है – यदि मानवता जीवित रहना चाहती है तो मनुष्यों को एक यौगिक जीवनशैली जीते हुए धरती माँ का सम्मान और संरक्षण अवश्य करना होगा।

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2023

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जुलाई 2022–जुलाई 2024	आश्रम जीवन प्रशिक्षण
जुलाई 1–दिसम्बर 31	योग चक्र अनुभव
सितम्बर 20–28	हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 4–12	राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 15–29	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण
नवम्बर 20–29	क्रिया योग एवं ज्ञान योग प्रशिक्षण

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

अगस्त 7–अक्टूबर 7	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)

कार्यक्रम

नवम्बर 4-12	मुंगेर योग संगोष्ठी 2

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ